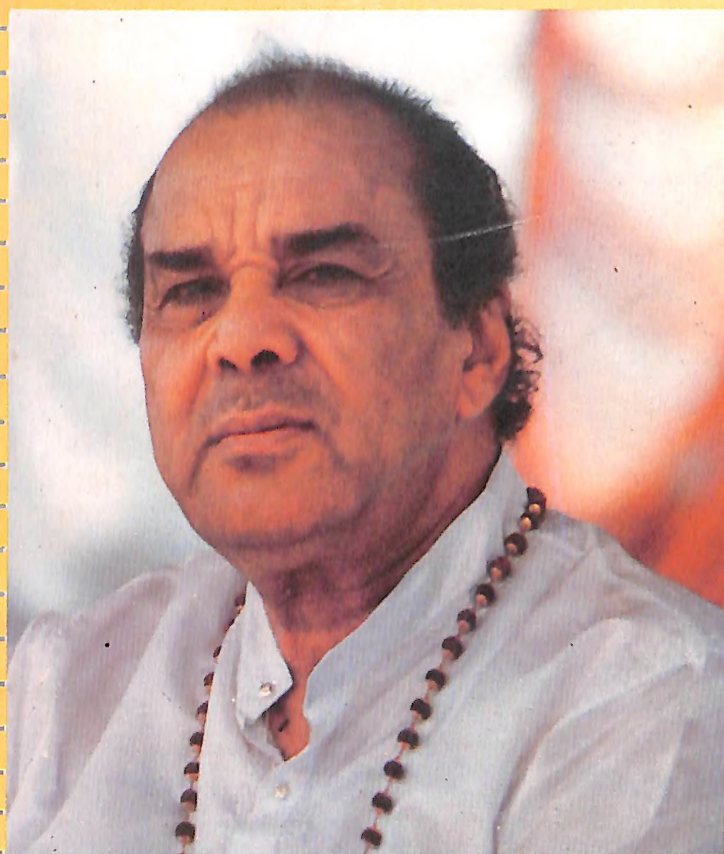
सिद्धाश्रम का योगी



डॉ० नारायण दत्त श्रीमाली

ज्ञान और चेतना की अनमोल कृतियां

पूज्यपाद गुरुदेव

डॉ० नारायण दत्त श्रीमाली जी

द्वारा रचित अनमोल ग्रंथ . . .

कुण्डलिनी यात्रा:		दैनिक साधना विधि	30/-
मूलाधार से सहस्रार तक	150/-	झर झर झर अमरत झरै	30/-
फिर दूर कहीं पायल खनकी	150/-	तांत्रोक्त गुरु पूजन	30/-
गुरु गीता	150/-	गुरु सूत्र	30/-
ज्योतिष और काल निर्णय	150/-	मैं बांहे फैलाये खड़ा हूं	20/-
निखिलेश्वरानन्द स्तवन	120/-	सिद्धाश्रम साधना सिद्धि	20/-
हस्तरेखा विज्ञान		गुरु संध्या	20/-
व पंचांगुली साधना	120/-	अप्सरा साधना	20/-
निखिल सहस्रनाम	96/-	दुर्लभोपनिषद	20/-
विश्व की अलौकिक साधनाएं	96/-	बगलामुखी साधना	20/-
ध्यान, धारणा और समाधि	120/-	धनवर्षिणी तारा	20/-
निखिलेश्वरानन्द शत कम	75/-	महाकाली साधना	20/-
अमृत बूंद	60/-	शिष्योपनिषद	20/-
स्वर्ण तंत्रम	60/-	भुवनेश्वरी साधना	20/-
लक्ष्मी प्राप्ति	60/-	दीक्षा संस्कार	20/-
निखिलेश्वरानन्द चिन्तन	40/-	षोडशी त्रिपुर सुन्दरी	20/-
सिद्धाश्रम का योगी	40/-	हंसा उड़ हु गगन की ओर	20/-
निखिलेश्वरानन्द रहस्य	40/-	साधना एवं सिद्धि	15/-
आधुनिक हिप्नोटिज्म		गुरु और शिष्य	15/-
के 100 स्वर्णिम सूत्र	60/-	नारायण सार	15/-
प्रत्यक्ष हनुमान सिद्धि	40/-	नारायण तत्व	15/-
भैरव साधना	40/-	गुरुदेव	15/-
स्वर्णिम साधना सूत्र	40/-	सिद्धाश्रम	15/-

सम्पर्क

मंत्र-तंत्र-यंत्र विज्ञान, डॉ. श्रीमाली मार्ग, हाईकोर्ट कॉलोनी, जोधपुर फोन 0291-432209

सिद्धाश्रम, 306 कोहाट एन्क्लेव, पीतमपुरा, नईदिल्ली फोन 7182248, फैक्स: 7196700

सिद्धाश्रम का योगी



आशीर्वाद

डॉ० नारायण दत्त श्रीमाली



एस-सीरिज

संकलन - सम्पादन

कैलाश चन्द्र श्रीमाली

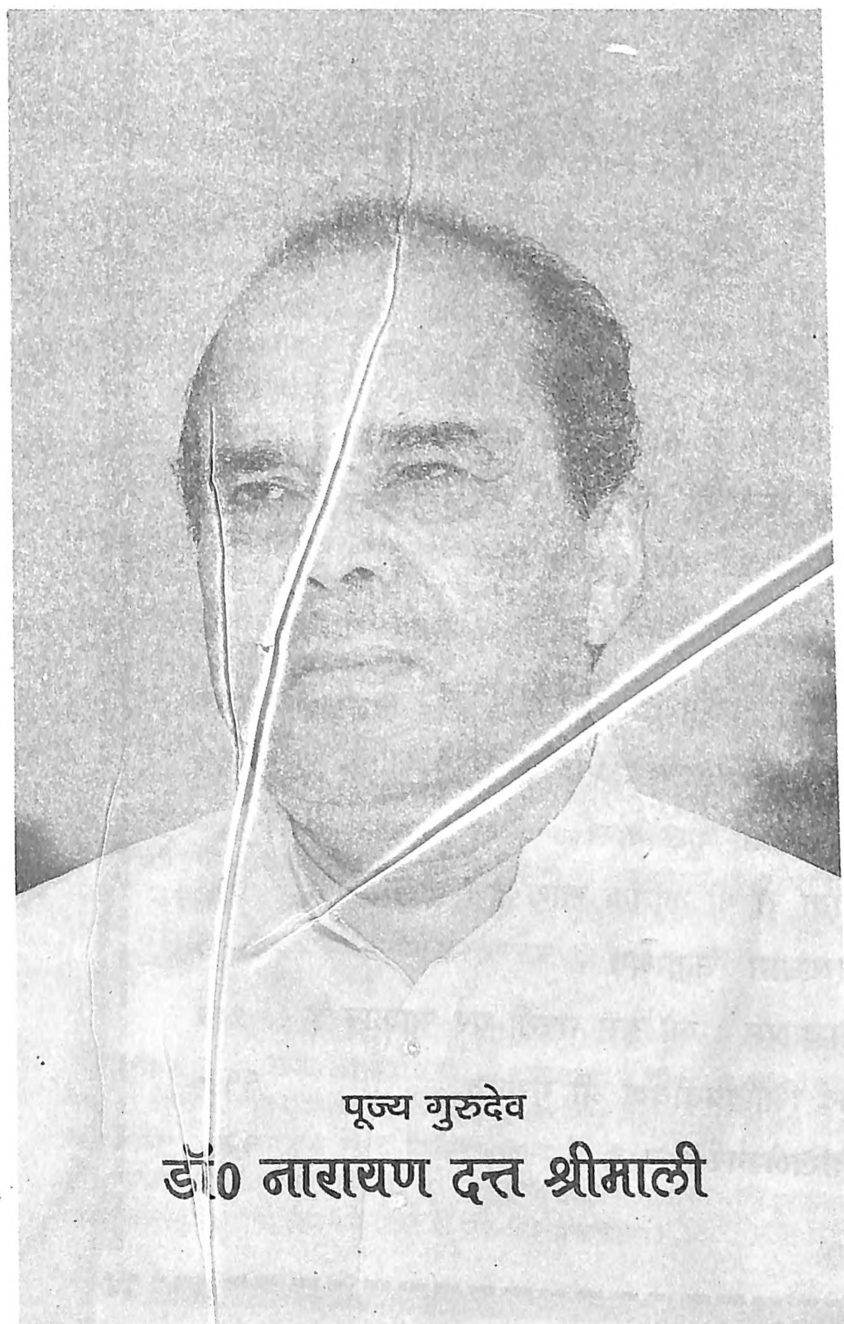
प्रकाशक
मनस चेतना केन्द्र
डॉ० श्रीमाली मार्ग, हाई कोर्ट कॉलोनी
जोधपुर - 342001 (राजस्थान)
फोन : 0291-32209, फेक्स : 0291-32010

प्रथम संस्करण : चैत्र मास नवरात्रे 2002

:

मूल्य : 40/-

मुद्रक : आर. एस. ऑफसैट प्रिन्र्टस
487/84, स्कूल रोड़, पीरागढी
नई दिल्ली -81


पूज्य गुरुदेव
डॉ० नारायण दत्त श्रीमाली

अनुक्रम

प्रशस्ति . . .

पूज्यपाद गुरुदेव डॉ० नारायण दत्त श्रीमाली जी एक ऐसे अद्वितीय एवं उदात्तम व्यक्तित्व हैं, जिनके चिन्तन मात्र से ही दिव्यता का बोध होने लगता है। प्रलयकाल में समस्त जगत को अपने भीतर समाहित किये हुए महात्मा हिरण्य गर्भ की तरह शान्त और सौम्य हैं। व्यवहारिक क्षेत्र में स्वच्छ धौत वस्त्र में सुसज्जित ये जितने सीधे-सादे से दिखाई देते हैं, इससे हट कर कुछ और भी हैं, जो सर्व साधारण गम्य नहीं है। साधनाओं के उच्चतम सोपान पर स्थित विश्व के जाने-माने सम्मानित व्यक्तित्व हैं। इनका साधनात्मक क्षेत्र इतना विशालतम है, कि इसे शब्दों के माध्यम से नहीं आंका जा सकता। किसी भी प्रदर्शन से दूर हिमालय की तरह अडिग, सागर की तरह गम्भीर, पुष्पों की तरह सुकोमल और आकाशवत् निर्मल हैं।

इनके सम्पर्क में आया हुआ व्यक्ति जो इनके विशाल साहित्य से परिचित है, एक बार इन्हें देखकर अचम्भे में पड़ जाता है, अवाक हो कुछ सोचने लग जाता है– "ये तो महर्षि जह्नु की तरह अपने अन्तस में ज्ञान गंगा के पवित्र प्रवाह को समेटे हुए हैं।"

पूज्य गुरुदेव ऋषिकालीन भारतीय ज्ञान परम्परा के अद्वितीय कड़ी हैं, जो ज्ञान मध्यकाल में अनेक घात-प्रतिघात के कारण विच्छिन्न हो, निष्प्राण हो गया था, जिस दिव्य ज्ञान की छाया तले समस्त मानव जाति ने सुख, शांति एवं आनन्द का अनुभव किया था, जिस ज्ञान से सम्बल पाकर सभी गौरवान्वित हुए थे तथा समस्त विसंगतियों को परास्त करने में सक्षम हुए थे, जिस ज्ञान को हमारे ऋषियों ने अपनी तपः ऊर्जा से सबल एवं परिपुष्ट करके जन कल्याण के हितार्थ स्वर्णिम स्वप्न देखे थे . . . आज श्रीमाली जी समाज के प्रत्येक विषमताओं से जूझते हुए, अपने को तिल-तिल जलाकर उसी ज्ञान परम्परा को पुनः जाग्रत करके, समस्त मानव जाति को एक सूत्र में पिरोकर, उन्हें पुनः ज्ञान प्रवाह से आप्लावित करने के लिए सतत प्रयासरत देखे जाते हैं। मानव कल्याण के लिए अपनी आंखों में अथाह करुणा समेटे हुए सतत प्रवाहमान निर्मल गंगा की अजस्र धारा की तरह भविष्य के प्रति आशान्वित हैं। मंत्र और तंत्र के माध्यम से, ज्योतिष, कर्मकाण्ड एवं यज्ञों के माध्यम से शिविर तथा साधनाओं के द्वारा जन-जन तक पहुंच कर ज्ञान-चेतना का जो लक्ष्य है, उसी ओर अग्रसर हैं।

ऐसे महामानव के लिए कुछ कहने और लिखने से पूर्व बहुत कुछ सोचना पड़ता है। जीवन के प्रत्येक आयाम को स्पर्श करके भी सभी उद्वेगों से रहित, जो राम की तरह मर्यादित, कृष्ण की तरह सतत चैतन्य, सप्तर्षियों की तरह सतत भावगम्य अनन्त तपः ऊर्जा से सम्वलित ऐसे योगीराज स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी से समस्त सिद्धाश्रम परम सौभाग्यवान, पुण्यवान तथा गौरवान्वित है। यह भूलोक तथा समस्त मानव जाति इनके इस मानव कल्याण के लिए किये गये कार्यों के प्रति चिर ऋणी रहेगा।





हिमालय के योगियों के परिचय

हिमालय वर्षों से उच्चकोटि के योगियों और संन्यासियों का आश्रय-स्थल है, ज्ञान-विज्ञान का; आयुर्वेद और अध्यात्म का पुञ्ज है, जिसका महत्त्व कभी भी क्षीण नहीं हुआ; यहां पर ऐसी आत्माएं विचरण करती रहती हैं, जिन्हें हमने देवताओं की संज्ञा से विभूषित किया है, अभी तक हमने हिमालय की पूर्णता में से बहुत ही कम अंश को समझा है, पहिचाना है, जिस दिन मनुष्य हिमालय के पूर्णत्व को समझ लेगा, उस दिन उसके जीवन में किसी प्रकार की न्यूनता नहीं रहेगी।

हिमालय हमारे जीवन का आधार है, भारत की जनता का हृदय है और ज्ञान का अटूट भण्डार है; वर्षों से हिमालय ने अपने अन्दर जो शक्ति और महत्त्व पुञ्जीभूत कर रखा है, वह अपने-आप में स्तुत्य है। कदम-कदम पर प्रकृति के इतने विविध रूप हिमालय में हैं, कि उसे निरन्तर देखते रहने पर भी जी नहीं अघाता। हर कदम पर अमूल्य रत्नों और खनिजों का ऐसा भण्डार भरा पड़ा है, कि जिसकी कोई मिसाल इस संसार में नहीं है. . . छलछलाती पवित्र नदियां, बर्फ के सुन्दर राजमुकुट, झूमते हुए वृक्ष और विविध प्रकार की वनस्पतियों का क्या कहना!

इन सबसे बढ़कर हिमालय में देखने, सुनने और मनन करने योग्य वे साधु-संन्यासी हैं, जिनके कदमों ने हिमालय का चप्पा-चप्पा छान मारा है, जिन्होंने

जी भर कर हिमालय को जीया है और जो प्रकृति पर पूर्णतः आधिपत्य स्थापित कर हिमालय की गोद में निश्चिन्त, निर्भीक व निर्द्वन्द्व हैं, जिनकी तपस्या से पूरा भारतवर्ष मुखरित है, जिनकी ज्ञान-सुगन्ध से यह देश सुवासित है. . . और जिनके चिन्तन तथा साधना-शक्ति की वजह से हजारों-हजारों वर्षों के बाद भी निरन्तर प्रहार एवं विपरीत परिस्थितियों को झेलते रहने पर भी हमारी संस्कृति अक्षुण्ण है, मौलिक है और प्राण-संजीवनी है; ऐसे ही महात्मा जीवन के सूर्य हैं, जिनके प्रकाश से हम प्रकाशित हैं। ऐसे ही महात्माओं के दर्शन जीवन का पुण्य कहलाता है।

यहां उन लाखों संन्यासियों और योगियों में से कुछ का परिचय दिया जा रहा है, जिससे आम व्यक्ति भी यह समझ सके, कि हमारी संस्कृति और सभ्यता, हमारा ज्ञान और चिन्तन कितने उच्च स्तर का है! मैं यह निर्णय नहीं कर पा रहा हूं, कि मेरे परिचित उन हजारों उच्चकोटि के साधकों-संन्यासियों में से किनका चयन करूं और छोड़ दूं। अपने-अपने क्षेत्र में सभी विशिष्ट हैं, साधना और सिद्धियों के क्षेत्र में अद्वितीय हैं, प्रकृति के रहस्यों को नियन्त्रित करने में सर्वोपरि हैं; फिर भी मैं उन योगियों और संन्यासियों का संक्षिप्त परिचय आगे की पंक्तियों में दे रहा हूं, जो आज हिमालय के श्रेष्ठ योगियों में से गिने जाते हैं, जिनके सैकड़ों-हजारों शिष्य हैं. . . आज भी किसी गृहस्थ शिष्य को पाकर वे उतनी ही ममता, अपनत्व और स्नेह से मिलते हैं, जितनी ममता से संन्यासी शिष्यों से मिलते हैं!

मैं इन योगियों का परिचय इसलिए भी दे रहा हूं, कि कोई भी गृहस्थ व्यक्ति चाहे वह साधक हो या नहीं, समय मिलने पर अवश्य ही इन स्थानों पर जाये, इन योगियों के चरणों में कुछ क्षणों के लिए बैठे और उनसे बातचीत कर, उनसे सम्पर्क, साहचर्य प्राप्त कर अनुभव करे, कि मेरे कहने में कितनी सत्यता है; वह स्वयं अनुभव करे, कि उच्चकोटि के योगी प्रकृति पर किस प्रकार से नियन्त्रण करने में समर्थ हैं तथा आकाश गमन, कायाकल्प, रोग मुक्ति एवं अन्य सिद्धियों में सिद्धहस्त हैं!

स्वामी योगद्वयानन्द

इस समय स्वामी जी की आयु एक सौ अट्ठाइस वर्ष के आस-पास कही जाती है। लगभग पचास वर्षों से मैं इनके निकट सम्पर्क में हूं, और मैंने इन वर्षों में इन्हें इसी अवस्था और स्वास्थ्य में देखा है। लम्बी उज्ज्वल सफेद दाढ़ी, सिर के पीछे सन की तरह फैले हुए बाल, छोटी-छोटी आंखें और कमर से नीचे भगवे रंग

की लंगोट लगाए हुए, कृषकाय होने पर भी स्वस्थ और चैतन्य। बात करते समय ऐसा लगता है, जैसे जीवनभर इनके पास बैठे रहें और इनसे ज्ञान प्राप्त करते रहें। इनके मन में किसी प्रकार का कोई भेदभाव और मतवैभिन्न नहीं है। कभी-कभी मौज आने पर कमर से नीचे तहमद की तरह एक धोती लपेट लेते हैं, परन्तु न तो किसी से कुछ मांगते हैं और न किसी से कुछ स्वीकार ही करते हैं।

वे कई वर्षों से पंचतरणी स्थान से दो या तीन किलोमीटर आगे पर्वतीय गुफा में निवास करते हैं। पंचतरणी अमरनाथ यात्रा का महत्त्वपूर्ण पड़ाव है। यहां खड़े होकर यदि सामने की ओर देखें तो यह गुफा साफ-साफ दिखाई देती है। गुफा तक पहुंचने के लिए बर्फ का कुछ भाग पार करना पड़ता है, परन्तु यह बर्फ कच्ची है, इसलिए बहुत सावधानी के साथ गुफा तक पहुंचना उत्तम रहता है।

यह गुफा "योग गुफा" कहलाती है। बाहर से इसका द्वार आठ फीट लम्बा-चौड़ा है, परन्तु अन्दर से यह गुफा बहुत बड़ी है और पांच-सात सौ साधु-संन्यासी एक साथ इस गुफा में रह सकते हैं। गुफा के अन्त में एक छोटा-सा निर्मल पानी का झरना भी है। कहते हैं, यह झरना अमरनाथ पर्वत से होकर यहां तक आता है। इस गुफा में दो-तीन सौ संन्यासी किसी भी समय देखे जा सकते हैं। ये सभी संन्यासी उच्चकोटि के योगी हों, यह आवश्यक नहीं है, परन्तु अधिकांश संन्यासी और योगी उच्चकोटि की साधनाओं में रत हैं और उन मूल्यों को प्राप्त करने में प्रयत्नशील हैं, जो जीवन का वास्तविक ध्येय कहे जा सकते हैं।

स्वामी योगद्वयानन्द क्षत्रिय हैं, कलकत्ता के पास हुगली में इनका जन्म हुआ था, परन्तु सत्रह वर्ष की अवस्था में ही किसी अंग्रेज से वाद-विवाद हो जाने पर ये घर से निकल पड़े और बाद में स्वामी विद्यानन्द जी से दीक्षा लेकर इन्होंने अपना नाम योगद्वयानंन्द रखा। ये पिछले सत्तर-अस्सी वर्षों से स्थायी रूप से यहां निवास करते हैं। अमरनाथ-यात्रा करते समय कई गृहस्थ व्यक्तियों ने भी इनके दर्शन किये हैं।

किसी भी गुफा में जाने का एक नियम या तरीका होता है, साधनात्मक रूप से गुफा के अधिष्ठाता से अनुमति लेकर ही गुफा में प्रवेश करना उचित माना गया है, यों तो प्रभु के घर और योगी की गुफा में कोई भी व्यक्ति, कभी भी और किसी भी समय जा सकता है।

स्वामी जी को जड़ी-बूटियों का अद्वितीय और अप्रतिम ज्ञान है। यदि इनके चरणों में कोई व्यक्ति दो-चार महीने ही रह जाय, तो ऐसी-ऐसी जड़ी-बूटियों के सम्पर्क में आ जाता है, कि किसी एक जड़ी-बूटी के द्वारा ही वह लाखों-करोड़ों रुपये इस भौतिक संसार में कमा सकता है। इसके अलावा स्वामी जी को कायाकल्प का भी उच्चकोटि का ज्ञान है, यदि मैं यह कहूं, कि इस समय कायाकल्प-विद्या के ये श्रेष्ठतम आचार्य हैं, तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है; उन्हें मात्र कुछ रसायन और जड़ी-बूटियों के द्वारा केवल तीन दिन में ही वृद्ध, रोगी, जर्जर, अशक्त और अपाहिज व्यक्ति का भी कायाकल्प कर उसे पूर्ण स्वस्थ बनाते मैंने सैकड़ों बार देखा है।

इसके अलावा भूगर्भ ज्ञान के भी ये सिद्धहस्त आचार्य हैं। भूमि में कहां पर क्या चीज गड़ी हुई है, किस जगह कौन-सी धातु कितनी गहराई में है, इसका ज्ञान स्वामी जी को श्रेष्ठ रूप में है। उन्होंने इससे सम्बन्धित साधनाएं अपने शिष्यों को सम्पन्न भी करवाई हैं। सबसे बड़ी बात यह है, कि इतना सब कुछ होने के बावजूद भी स्वामी जी का स्वभाव सर्वथा एक बालक की तरह है और कोई भी इनके चरणों में जाकर ज्ञान या सिद्धि प्राप्त कर सकता है।

आध्यात्मिक क्षेत्र में स्वामी जी का नाम श्रद्धा के साथ लिया जाता है, उन्होंने इस क्षेत्र में भी काफी सफलताएं प्राप्त की हैं। संकल्प और एकाग्रता के प्रभाव से किसी वस्तु का निर्माण इनके द्वारा सम्पन्न होते हुए मैंने कई बार अपनी आंखों से देखा है। इसीलिए हिमालय के योगियों में इनका नाम कस्तूरी की तरह महकने लगा है। वास्तव में स्वामी जी अलौकिक योग विभूतियों के पुञ्ज हैं।

टीला बाबा

इनका नाम टीला बाबा कब और कैसे पड़ा, यह मैं नहीं जानता, परन्तु पूरे हिमालय में इनको इसी नाम से जाना जाता है। लम्बा-चौड़ा शरीर, गौर वर्ण, उन्नत ललाट, घुटा हुआ सिर और लम्बी-सी चोटी यह इनका स्वरूप है, ये नीचे धोती और ऊपर झीना-सा चोगा पहनते हैं, सर्वथा निस्पृह और निर्मुक्त जीवन जीने वाले टीला बाबा अपने शिष्यों और साधकों में अत्यन्त लोकप्रिय हैं। बद्रीनाथ का मन्दिर विश्व प्रसिद्ध है। यह नर और नारायण दो पर्वतों के मध्य स्थित है। बद्रीनाथ के पास ही 'अलकनन्दा' बहती है। ऋषिकेश से बद्रीनाथ बस के द्वारा पहुंचा जा सकता है।

यहां से अलकनन्दा के किनारे-किनारे स्रोत की तरफ दो-तीन मील ऊपर पहुंचने पर माणा ग्राम आता है, जहां पर अलक़नन्दा और सरस्वती के संगम पर पत्थर का एक विशाल पुल है, जो आज भी आश्चर्य के साथ देखा जा सकता है। कहते हैं, कि इस पुल का निर्माण भीम ने किया थां, इसके दो या तीन फर्लांग आगे 'व्यास गुफा' है, जो अत्यन्त ही भव्य और अद्वितीय है। इसके पास ही 'गणेश गुफा' भी प्रसिद्ध है। कहते हैं, व्यास ने महाभारत की रचना इसी गुफा में बैठकर सम्पन्न की थी। यह गुफा अन्दर से बहुत बड़ी है और इसमें हजार-दो हजार व्यक्ति आसानी से बैठ सकते हैं। टीला बाबा का निवास स्थान यही व्यास गुफा है। यदि कोई व्यक्ति संगम के आस-पास जाय, तो टीला बाबा के दर्शन आसानी से हो जाते हैं, इसके अतिरिक्त यहां सभी उच्चकोटि के साधु-संन्यासी आते-जाते रहते हैं और इस व्यास गुफा में कुछ समय तक रहकर, साधना सम्पन्न कर अपने गन्तव्य की ओर निकल जाते हैं।

टीला बाबा मूलतः गुजराती ब्राह्मण हैं। वर्षों पहले इन्होंने घर-बार छोड़ दिया था और पिछले साठ-सत्तर वर्षों से इसी गुफा में रहते हैं। इन्हें हमेशा शांत, सरल और शिशुवत् व्यवहार करते हुए ही पाया है।

इनकी आयु इस समय सौ वर्ष से कुछ अधिक ही होगी। कहते हैं, ये आजादी की क्रांति में सम्मिलित हुए थे और बाद में किसी साधु के सम्पर्क में आकर उनके साथ निकल पड़े। ज्ञान के क्षेत्र में टीला बाबा अद्वितीय हैं। बैठे-बैठे ही ब्रह्माण्ड के रहस्यों को जान लेना इनके लिए असम्भव नहीं। इनके द्वारा वायु में से मंगाए हुए कई भौतिक व्यंजनों का उपयोग मैंने भी किया है।

"कनकावती साधना" में ये अद्वितीय हैं। इस साधना के द्वारा कोई भी व्यक्ति करोड़ो रुपये, स्वर्ण, बहुमूल्य रत्न आदि वायु में से प्राप्त कर सकता हैं। बाबा के लिए तो यह सब कंकर-पत्थर के समान हैं, परन्तु इनकी कृपा प्राप्त कर कई [illegible] व्यक्ति अरबपति हो गये।

स्वामी जी को 'जल गमन प्रक्रिया' का विशेष ज्ञान है। जल के ऊपर ये उसी प्रकार चलते हैं, जिस प्रकार आदमी सड़क पर चलता है। यही नहीं, अपितु इनके सैकड़ों शिष्य भी इसी प्रकार से जल गमन प्रक्रिया में सफल हुए हैं। विद्या और साधना सिखाने में ये किसी प्रकार की आनाकानी नहीं करते और अनजान व्यक्ति से भी उतने ही प्रेम और स्नेह से मिलते हैं, जैसे कोई अपने प्रियजन से मिल रहा हो।

स्वामी निश्चलानन्द

इनसे मैं पिछले पैंतीस वर्षों से परिचित हूं। स्वामी जी की आयु इस समय नब्बे वर्ष के आसपास होगी, परन्तु देखने में पचास वर्ष से ज्यादा नहीं लगते। आज भी पन्द्रह-बीस किलोमीटर पैदल चलना, वजन उठा लेना या दस-बारह घण्टे साधनारत रहना इनके लिए सामान्य-सी बात है। मझला कद, स्वस्थ और पुष्ट काया तथा देखने में आकर्षक स्वामी निश्चलानन्द भगवती काली के अनन्य उपासक हैं। कहते हैं, कि ये नित्य काली से साक्षात्कार करते हैं और सम्पूर्ण रात्रि मां काली के सान्निध्य में ही बिताते है।

इनके चेहरे का तेज अपने आप में अद्वितीय है। ऋषिकेश से बद्रीनाथ जाते समय मार्ग में जोशी मठ आता है। यहां से अठारह किलोमीटर आगे घाट चट्टी आती है, जहां पर अलकनन्दा और लक्ष्मण गंगा का संगम होता है। सिक्खों ने अब इस स्थान का नाम "गोविंद घाट" रख दिया है।

गोविंद घाट से चौदह किलोमीटर की दूरी पर घंघरिया स्थान है। यहां पर वन-विभाग का डाक बंगला, सिक्खों का गुरुद्वारा और पर्वतीय विकास निगम का विश्राम-भवन है। घंघरिया से ऊपर बाईं ओर पहाड़ी पर नजर डालें, तो 'गंध मादन पर्वत' दिखाई देता है, जहां से 'लक्ष्मण गंगा' उतरती हुई साफ-साफ दिखाई देती है। यहां से पांच किलोमीटर की चढ़ाई चढ़ने पर हेमकुण्ड नामक स्थान आता है, जो अद्वितीय स्थान है। अब यहां पर सिक्खों का महत्त्वपूर्ण गुरुद्वारा बन गया है। इस स्थान से दाहिनी ओर ऊपर 'पुष्पावल झील' है, जहां से पुष्पावती नदी बहती है। यही नदी विश्वविख्यात फूलों की घाटी के बीच में से होकर निकलती है। इस पुष्पावल झील के पास ही स्वामी निश्चलानन्द का आश्रम है। आश्रम में चालीस कमरे बनाये हुए हैं। ओढ़ने-बिछाने का पूरा प्रबन्ध है तथा [illegible] सा संन्यासी वहां रहते हैं।

स्वामी निश्चलानन्द योग विद्या के अद्वितीय आचार्य हैं। योग बल से किसी भी नवीन [illegible] की रचना कर लेना इनके लिए सहज सम्भव है। एक प्रकार से देखा जाय, तो इस क्षेत्र के ये अध्येता और आचार्य हैं। मात्र दृष्टि के द्वारा किसी भी पदार्थ का निर्माण अत्यन्त कठिन क्रिया है, परन्तु स्वामी जी इसके सिद्धहस्त आचार्य हैं। मुझे भी यह सिद्धि स्वामी जी के द्वारा ही प्राप्त हुई है।

स्वामी जी की यह विशेषता है, कि इनके मन में किसी के प्रति कोई भेद-भाव नहीं है। चाहे संन्यासी शिष्य हो या सामान्य गृहस्थ व्यक्ति। इनके आश्रम में जाने पर प्यार और स्नेह के साथ उसे सम्मान देते हैं. . . और यदि उसे कुछ सीखने की इच्छा होती है, तो वे अपने पास रखकर उसे सिखाते हैं।

वास्तव में ही ये कई प्रकार की सिद्धियों के स्वामी हैं। इनके साथ कुछ दिन रहना ही अपने-आप में एक अलौकिक अनुभव है।

योगीराज तत्त्वंगी महाराज

'केदारनाथ' हिमालय का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। मन्दाकिनी और अलकनन्दा का संगम रुद्र प्रयाग में होता है। रुद्र प्रयाग से केदारनाथ मार्ग पर गौरी कुण्ड तक मोटर मार्ग है। यहां से केदारनाथ चौदह किलोमीटर रह जाता है, पैदल मार्ग है, केदारनाथ अपने-आप में एक श्रेष्ठ स्थान है, जहां पर प्रति वर्ष हजारों श्रद्धालु भगवान शिव के दर्शन करने के लिये आते हैं। यहां पर तप्त कुण्ड भी है। इसका पानी खौलता रहता है।

केदारनाथ से छः किलोमीटर की दूरी पर वासुकी ताल है। यह काली गंगा का उद्गम स्रोत है। सम्पूर्ण संसार में नीलकमल केवल इसी ताल में मिलते हैं। कृष्ण जन्माष्टमी के अवसर पर स्थानीय लोग इसमें श्रद्धा के साथ स्नान करते हैं। यह ताल डेढ़ मील लम्बा और लगभग चौथाई मील चौड़ा है।

इसी ताल में लगभग दो फर्लांग आगे वासुकी पर्वत के पास एक महत्त्वपूर्ण गुफा है, जो 'कृष्ण गुफा' कहलाती है। कहते हैं, भीम के साथ कृष्ण कुछ दिनों के लिये इस गुफा में रहे थे। बाहर से तो यह गुफा छोटी-सी दिखाई देती है, परन्तु अन्दर से यह बहुत लम्बी-चौड़ी है और इसमें हजार-दो हजार व्यक्ति आसानी से बैठ सकते हैं।

आज भी यहां पर पांच-सात सौ संन्यासी किसी भी समय देखे जा सकते हैं। यही गुफा तत्त्वंगी महाराज का आश्रम है, जिसकी चर्चा आसपास के क्षेत्रों में अत्यधिक है, स्थानीय लोग इन्हें 'गंधी बाबा' के नाम से पुकारते हैं, क्योंकि इनके शरीर से निरन्तर कस्तूरी की तरह सुगन्ध निःसृत होती रहती है और यह सुगन्ध हवा के साथ दूर-दूर तक फैलती चली जाती है। इसी सुगन्ध के द्वारा इनके उपस्थिती का एहसास होने लगता है।

तत्त्वंगी महाराज 'ब्रह्म विद्या' के श्रेष्ठतम जानकार हैं और 'परकाया प्रवेश' के सिद्धहस्त आचार्य भी। इनके कई शिष्य भी परकाया प्रवेश के जानकार हैं। मुझे भी इन्होंने एक बार वहां पर रहने और परकाया प्रवेश विद्या सीखने का निमंत्रण दिया था, पर दुर्भाग्य से अभी मुझे उनके साथ लम्बे समय तक रहने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हो सका है।

इनके साथ रहना भी अपने-आप में एक अलौकिक अनुभव है। ऐसा लगता है, जैसे हम किसी दिव्य-धाम में पहुंच गये हों। इनके आश्रम में योग बल से प्राप्त भौतिक पदार्थों का भण्डार भरा रहता है। जो पदार्थ और व्यंजन हम बड़े-बड़े शहरों में नहीं प्राप्त कर पाते, वे यहां पर आसानी से उपलब्ध हैं।

कोई भी गृहस्थ व्यक्ति या संन्यासी तत्त्वंगी महाराज के दर्शन कर उनके साथ रह सकता है. . . और जीवन को पूर्णता की ओर अग्रसर कर सकता है।

सोहं बाबा

हिमालय के पवित्र और दिव्य धामों में 'गंगोत्री' का प्रमुख स्थान है। ऋषिकेश से लांका तक बस-यात्रा की जा सकती है। वहां से चार-पांच मील आगे ही गंगोत्री स्थान है. . . जहां पहली बार गंगा पहाड़ों से नीचे उतर कर मैदान पर अपने चरण रखती है। अधिकतर श्रद्धालु यात्री गंगोत्री तक ही जाते हैं। गंगोत्री से ऊपर जाते समय मार्ग में 'भृगु पंथ शिखर' के पास भोजगाड नामक नदी का भगीरथी से संगम होता है। इस स्थान का नाम चीड़वासा है। यही भोजगाड नदी पुराणों की वैतरणी नदी है। इस नदी को पार करते ही सामने गोमुख दिखाई देने लगता है। यहीं पर सोहं बाबा का स्थान है।

यह यात्रा थोड़ी कठिन अवश्य है, परन्तु मार्ग के प्राकृतिक दृश्य इतने मनोहारी और आनन्ददायक हैं कि यात्री सब कुछ भूल जाता है। इस आश्रम में निवास करने योग्य कई स्थान हैं। लगभग तीस-बत्तीस छोटी-छोटी गुफाएं हैं, प्रत्येक गुफा में पन्द्रह से बीस आदमी आसानी से सो सकते हैं। ये गुफाएं इतनी स्वच्छ तथा गर्म हैं कि आश्चर्य होता है।

स्वामी जी शैव हैं और शिव के अनन्य भक्त हैं, इन्हें अलौकिक सिद्धियां प्राप्त हैं। साथ ही इनके पास बैठने से स्वतः ही शरीर में बिजली का सा करण्ट अनुभव होता है। सही अर्थों में बाबा के शरीर से विद्युत-तरंगें निकलती रहती हैं।

किसी भी व्यक्ति का कोई भी इष्ट हो, स्वामी जी में यह शक्ति और सामर्थ्य है कि वे उस इष्ट के दर्शन तत्क्षण उसे करा देते हैं. . . और व्यक्ति बाबा के चरणों में बैठा हुआ अपने इष्ट के दर्शन कर धन्य हो जाता है।

इनके आश्रम की वजह से पिछले कुछ वर्षों में गोमुख की ओर जाने वाले यात्रियों की संख्या बढ़ी है. . . और जो भी इनके सत्संग में कुछ घंटे व्यतीत करता है, वह अलौकिक अनुभव प्राप्त करके ही लौटता है। इसके अलावा स्वामी जी को स्थानीय जड़ी-बूटियों का भी विशेष ज्ञान है। कैंसर की श्रेष्ठतम औषधि इनके पास है। कैंसर के कई मरीज इनके पास जाकर पूर्णतः निरोग होकर लौटे हैं।

कृषकाय होने पर भी स्वामी जी के चेहरे के चारों ओर एक अपूर्व प्रभामण्डल दिखाई देता है, जो अपने-आप में अद्वितीय है। योग विद्या के स्वामी जी अद्वितीय जानकार हैं। योग के माध्यम से ब्रह्माण्ड की हलचलों को जान लेना, किसी आगन्तुक व्यक्ति को उसका निवास स्थान और वहां होने वाली गतिविधियों को दिखा देना इनके लिए सहज सम्भव है। स्वामी जी का स्वभाव बालक की तरह मृदुल तथा कोमल है। इनके पास जाने पर ऐसी इच्छा रहती है कि इनके पास ही रहा जाय और काफी दिन इनके साथ व्यतीत किए जायें। कई गृहस्थ स्त्री-पुरुष इस आश्रम के आस-पास घूमते देखे जा सकते हैं। गृहस्थ और संन्यासी साधकों का यह अपूर्व संगम-स्थल है। प्रत्येक व्यक्ति को जीवन में एक बार अवश्य ही गोमुख की ओर जाना चाहिए।





एक संन्यासी की डायरी के कुछ पृष्ठ

"स्वामी वेदानन्द" लगभग अस्सी से भी ज्यादा आयु प्राप्त संन्यासी हैं, उनका जीवन उच्चकोटि की साधनाओं में व्यतीत हुआ है और उन्होंने अपने पैरों से हिमालय का चप्पा-चप्पा नापा है, सुदूर हिमालय के गर्भ में बैठकर उन्होंने साधनाएं सम्पन्न की हैं। आज हिमालय के योगियों, संन्यासियों में उनका नाम अत्यन्त आदर के साथ लिया जाता है।

लगभग आठ वर्ष की अवस्था से ही उन्होंने संन्यास ले लिया था। आज वे सिद्धाश्रम के श्रेष्ठ योगियों में से एक हैं, डायरी लेखन उनका प्रिय शौक रहा है, उनके जीवन के यौवनकाल में लिखी गयी डायरी के कुछ पृष्ठ पाठकों को समर्पित हैं—

स्थान : कनखल

समय : मध्याह्न

आश्चर्य है, यह कौन युवा संन्यासी है, जो अत्यधिक आकर्षक और सम्मोहक है! जरूर कोई देवात्मा संन्यासी के रूप में अवतरित हुई होगी, क्योंकि

ऐसी साधना सामान्य मनुष्य के बस की बात नहीं है, सत्रहवां दिन है. . . और देखता हूं कि यह युवा संन्यासी अविचल भाव से गंगा के मध्य निश्चल खड़ा सतत मंत्र-जप कर रहा है. . . खाने-पीने के नाम पर भी कभी-कभी केवल गंगा जल ले लेता है, अपने दोनों तरफ मजबूत काष्ठस्तम्भ लगा रखे हैं, जिससे कि नींद के प्रकोप से माला गिर न जाय या झपकी आने पर शरीर पानी में न पड़ जाय!

यह "ऊर्ध्वचेता-साधना" है, जिसमें जरूरत से ज्यादा दमखम, हौसला और हिम्मत होती है, वही इस प्रकार की साधना को सम्पन्न करने का जोखिम उठा पाता है। चौबीस दिन की यह साधना अत्यधिक कठिन और कष्टप्रद होती है, इसमें सीने तक पानी में खड़े-खड़े मंत्र-जप सम्पन्न करना होता है, भूख-प्यास, नींद को पूरी तरह से नियन्त्रित कर सतत साधना सम्पन्न करनी पड़ती है। मेरे एक गुरु भाई हैं, उन्होंने छः बार इस प्रकार की साधना सम्पन्न करने का उपक्रम किया, पर हर बार निराशा ही हाथ लगी; साधना के दौरान पानी में खड़े-खड़े पावों की नसें फूल जाती हैं और उसमें पानी भर जाने के कारण असहनीय पीड़ा होने लगती है, इससे भी ज्यादा व्यथा उस समय होती है, जब मछलियों को ताज़ा मांस खाने को मिलता है और वे पांवों के मांस को नोच-नोच कर खाने लगती हैं. . . जरूर इस संन्यासी के साथ भी ऐसा ही घटित हो रहा होगा, परन्तु फिर भी इसके चेहरे पर किसी प्रकार का तनाव या व्यथा के चिन्ह नहीं हैं; सत्राह दिन से तो मैं बराबर देख रहा हूं. . . अवश्य ही इस व्यक्ति में अजेय संकल्प-शक्ति है, जिसके सहारे यह इस प्रकार की साधना सम्पन्न करने में प्रयत्नशील है!

अवश्य ही यह साधक आगे चलकर बहुत ऊंचे स्तर पर पहुंचेगा, ऐसा मेरी आत्मा कह रही है।

स्थान : कनखल

समय : प्रातः लगभग दस बजे

मैंने बराबर इस संन्यासी को पानी में खड़े हुए देखा है, कल इसकी साधना का अन्तिम दिन था, इसने अपनी साधना जिस संकल्प-शक्ति के बल पर सम्पन्न की है, वह विरले लोगों के ही नसीब में होती है। गंगा-तट पर हजारों लोगों की भीड़ है, इस भीड़ में सैकड़ों संन्यासियों को भी देख रहा हूं. . . मैं देख रहा हूं, कि संन्यासी ने अपना अन्तिम मंत्र-जप सम्पन्न किया और दोनों हाथ ऊपर उठाकर

अपने गुरु को मन ही मन अर्घ्य दिया. . . कुछ युवा संन्यासी पानी में उतरे हैं, और आस-पास के स्तम्भों से बंधे रस्से को हटाकर इस तेजस्वी संन्यासी को पानी से बाहर लाने का उपक्रम कर रहे हैं; चौबीस दिन एक स्थान पर खड़े होने से पांवों का खून जम-सा गया है, संन्यासी चलते हुए लड़खड़ा रहा है, उसे सहारा देकर बाहर लाया गया, उफ! उसके पांव छलनी हो गये हैं, नसें फूल गई हैं. . . पांवों को जगह-जगह से मछलियों ने काट खाया है, कुछ स्थानों पर एक-एक इंच गहरे गड्ढे भी दिखाई पड़ रहे हैं, मगर इतना सब कुछ होने के बावजूद भी उसके चेहरे पर किसी प्रकार की पीड़ा या विषाद के चिन्ह नहीं हैं, वास्तव में ही यह संन्यासी लौह पुरुष है, सारा आकाश उस संन्यासी की जय-जयकार से गुंजरित हो रहा है, कुछ युवा संन्यासियों ने गर्म तेल से उसके पैरों की मालिश प्रारम्भ कर दी है, शायद ये युवा संन्यासी दृढ़ व्यक्तित्व के शिष्य हैं, जिस अप्रतिम संकल्प-शक्ति के सहारे इस योगी ने यह साधना सिद्ध की है, वह अद्वितीय हैं!

मेरा मन और शरीर स्वतः ही इसके चरणों में झुक गया है।

स्थान : गोमुख
समय : लगभग तीन बजे

मेरा तो पूरा समय हिमालय में भटकते ही बीतता है। मेरे मन की यह बलवती इच्छा थी, कि मैं गंगोत्री में जाकर गंगा-स्नान करूं और यदि सम्भव हो, तो मैं गोमुख तक पहुंचूं। गंगोत्री आने पर मुझे स्वामी सत्यानन्द जी मिल गये, जो अब तक तेईस बार गोमुख की यात्रा कर चुके हैं; उनका साथ मिलने से मुझे विश्वास हो गया कि अब मैं अवश्य ही अपनी आंखों से गोमुख के दर्शन कर सकूंगा, जहां पहली-पहली बार गंगा, बूंद का रूप धारण करती है।

आज कितना आनन्ददायक और सौभाग्यशाली दिन है, कि मैं गोमुख के सामने हूं! इतना आनन्ददायक दृश्य कि हजार-हजार मुंह से शेषनाग भी जिसका बखान नहीं कर सकते। प्रकृति यहां खुले हृदय के साथ अवस्थित है, एक-एक दृश्य बांध देने लायक है. . . बर्फ की एक सुरंग-सी बनी हुई मुझे दूर से ही स्पष्ट दिखाई दे रही है, इसी सुरंग से बूंद-बूंद टपक कर पानी छलछलाता हुआ निकलता है. . . और यही पानी आगे चलकर गंगोत्री पर गंगा का रूप धारण करता है।

चारों तरफ कड़ाके की सर्दी है, मैंने तीन स्वैटर और कम्बल ओढ़ रखे हैं, फिर भी मेरा पूरा शरीर थरथरा रहा है. . . परन्तु यह क्या? सामने बर्फ की सुरंग के मुहाने पर भयंकर शीत में भी कौन व्यक्ति अविचल भाव से बैठा है! मैं अपने कौतूहल को रोक नहीं पा रहा हूं. . . और स्वामी सत्यानन्द जी से उस तरफ चलने के लिए आग्रह करता हूं। उनका कहना है, कि उस तरफ जाना खतरे से खाली नहीं है, किसी भी समय बर्फ का तूफान आ सकता है और जान जोखिम में पड़ सकती है, परन्तु मेरी बलवती इच्छा उस देवात्मा के दर्शन करने की है, मैं उनसे हठ कर आगे बढ़ता हूं और उस स्थान को देखता हूं, जहां संन्यासी अविचल भाव से ध्यानस्थ है।

बर्फ की बिखरी हुई श्रीराशि के बीच छोटी-सी चट्टान और उस पर केवल एक लंगोटी धारण किये हुए युवा संन्यासी किसी विशेष साधना में रत है! मैं और नजदीक जाता हूं, तो मैं आश्चर्य से ठक्-सा रह जाता हूं, यह तो वही संन्यासी है, जिसे मैंने कनखल में साधना करते हुए देखा है! क्या इसने अपने शरीर को पूरी तरह से साध रखा है? क्या इस पर सर्दी या तूफान का कोई असर नहीं होता? यह कौन साधक है, जिसने खतरों से खेलना ही अपने जीवन का ध्येय बना रखा है. . . वास्तव में ही यह अद्वितीय संकल्पशील व्यक्तित्व है। स्वामी सत्यानन्द जी ने मन ही मन उन्हें प्रणाम किया और बताया कि चार महीने पहले भी मैं यहां आया था, तब से ही यह संन्यासी यहां बराबर ध्यानस्थ बैठा रहता है। तीन-चार दिन में केवल एक बार चीड़वासा जाता है, वहां चार-छः घंटे रुकता है और फिर लौट आता है। चार दिन में केवल एक हाथ में आने लायक ही आहार ग्रहण करता है, इसके अलावा यह कुछ भी नहीं लेता। चीड़वासा के स्वामी जी ने कम्बल भेंट किये, तो इसने कम्बल भी वहीं छोड़ दिये, अत्यधिक तेजस्वी व्यक्तित्व है, इसका!

स्थान : केदारनाथ

समय : प्रातः

हिमालय में रहकर भी जिसने भगवान् केदारनाथ के दर्शन नहीं किये, उसका जीवन ही व्यर्थ है। ऐसे जीवन का मूल्य ही क्या जिसने केदारनाथ व बद्रीनाथ के चरणों में अपना सिर न झुकाया हो! पर केदारनाथ का रास्ता अत्यधिक ऊबड़-खाबड़ और खतरों से भरा है; कहीं-कहीं पर तो पगडंडी एक फुट से भी

अधिक संकरी हो जाती है, परन्तु मैंने भगवान् केदारनाथ के दर्शन करने का पक्का निश्चय कर रखा था. . . और जब आज मैं भगवान् केदारनाथ के मन्दिर में उनके विग्रह के सामने खड़ा हूं, तो मेरा सारा शरीर रोमाञ्चित है, आंखों से प्रेमाश्रु निरन्तर प्रवहित हैं. . . और आज के दिन को मैं अपना सौभाग्यशाली दिन कहता हूं।

गर्भगृह की परिक्रमा कर ज्यों ही मैं उत्तर द्वार की ओर से बाहर आता हूं, तो किसी के मुख से उच्चरित मधुर शब्द मेरे कानों में अमृत-कणों के रूप में बरसते हैं. . . इतना सुमधुर कंठ, इतना शुद्ध, त्रुटिहीन उच्चारण और इतनी तन्मयता, श्लोक के शब्द उसके होंठों से निःसृत होकर पूरे वातावरण को शिवमय बना रहे हैं—

सिन्धू पात्रं परिधृत नियतं शारदा भावगम्याः,
पत्रमुर्वीं विधाय मशीमिव कृत्वा कज्जलं पर्वतारव्यं।
देवानां दिव्य वृक्षै र्लिखति च सदा लेखिनीं मन्यमाना;
नान्तं नूनं च याति तव गुण गणः सर्ववन्धः कदाचित्।।

यह कैसा संयोग है, कि बार-बार इस देव संन्यासी के दर्शन हो जाते हैं! कनखल में इसकी साधना की सहनशीलता देखी, गोमुख पर इसकी अजेय संकल्प-शक्ति मेरे सामने थी. . . और आज केदारनाथ पर इससे भेंट विलक्षण है! मेरी डायरी के जो पृष्ठ इस युवा संन्यासी के वर्णनों से भरे हैं, वे मूल्यवान हैं, मेरे लिए धरोहर हैं; यह संन्यासी आगे चलकर अद्वितीय व्यक्तित्व बन सकेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं।

स्थान : मनाली, व्यास नदी के किनारे
समय : सायंकाल

'कुल्लू-मनाली' हिमालय का एक अत्यन्त सौन्दर्यशाली स्थल है, जहां प्रत्येक व्यक्ति अपना कुछ समय व्यतीत करना चाहता है। कई वर्षों बाद आज मैं पुनः इस स्थान पर आया हूं. . . वर्षा के दिन हैं और इस समय यह व्यास नदी अपने पूरे उद्दाम यौवन पर है; ऐसा लग रहा है, जैसे सारे आस-पास के प्रदेश को लील जायेगी। मनाली के लोग घबराये हुए हैं, कि पता नहीं किस समय नदी ताण्डव नृत्य प्रारम्भ कर दे. . . कुछ कहा नहीं जा सकता। लोग घर-बार छोड़ कर दूर-दूर

अपने सगे-सम्बन्धियों के यहां जाने लगे हैं। व्यास नदी का विकराल रूप उनकी आंखों में दहशत पैदा कर रहा है। मैं इस नदी के किनारे पर खड़ा इसके प्रचण्ड यौवन को देख रहा हूं और सोच रहा हूं कि तुरन्त कुल्लू की तरफ लौट जाऊं, एकाध दिन में यह नदी अवश्य ही प्रलय का सा दृश्य उपस्थित कर देगी।

तभी एक संन्यासी को अपने सामने आते हुए देखता हूं, उसके पास आने पर मैं पहिचान लेता हूं, कि यह तो वही संन्यासी है, जिसे मैंने पिछली बार केदारनाथ पर देखा था, मैं अपने-आप को रोक नहीं पाता हूं और आगे बढ़कर उसके चरणों को छू लेता हूं . . . वह पहले से थोड़ा दुबला हो गया है, परन्तु उसकी चाल वैसी ही गम्भीर तथा सिंहवत् है, उसके चेहरे पर वैसी ही तेजस्विता और शांति का साम्राज्य है!

वे उठाकर मुझे अपने सीने से लगा लेते हैं. . . इतना विशाल वक्षस्थल इतना उद्दाम यौवन तथा ऊष्मा का भण्डार मैंने पहली बार अनुभव किया! सेकेण्ड के कुछ हिस्से के लिए मेरा शरीर उनके वक्षस्थल से लगा था, पर इस एक क्षण में ही मेरा सारा शरीर ऊष्मा से भर गया, आनन्द से सराबोर हो गया. . . काश! मैं कुछ पल और उनके सीने से चिपका रहता।

तभी हमने देखा, कि नदी विकराल रूप धारण कर रही है, उसकी लहरें आठ-दस फीट ऊपर उठने लगी हैं और किनारों को तोड़कर फैलने लगी हैं; मैंने हल्के स्वर में कहा– "हमें तुरन्त यहां से आगे बढ़ जाना चाहिए". . . उन्होंने मेरी ओर ऐसी नजरों से देखा, कि मैं संन्यासी होकर भी लज्जा, शर्म और ग्लानि से भर गया, मानों वे नजरें कह रही हों, कि संन्यासी होकर भी प्राणों का ऐसा मोह!

तभी एक व्यक्ति नदी की चपेट में आ गया, उसके गले से घबराती, फंसी हुई-सी आवाज वातावरण में गूंज पड़ी. . . 'बचाओ' शब्द आस-पास फैल गया, पर किसमें हिम्मत थी कि उस नदी में कूद कर अपने हाथों मृत्यु का वरण करे। उसको बचाया जाना तो असम्भव था ही, साथ ही कूदने वाले का खुद का भी बचना सम्भव नहीं था।

संन्यासी ने एक पल के लिए मेरी ओर देखा, मैं यह डायरी लिखते

हुए बिलकुल सत्य बोल रहा हूं, कि मेरी आंखों में भय भरा हुआ था, पर दूसरे ही क्षण मैंने देखा कि उस संन्यासी ने हहराती व्यास नदी में छलांग लगा दी है. . . मैं ही नहीं आस-पास जो लोग इधर-उधर भागने के उपक्रम में थे, वे सभी सन्न रह गये और चीख पड़े!

मैंने सोच लिया कि किसी भी हालत में संन्यासी और डूबने वाले व्यक्ति का बचना सम्भव नहीं है। अल्प समय में ही संन्यासी की मृत्यु इस प्रकार से हो जायेगी— मैंने ऐसी कल्पना ही नहीं की थी। इस तेजस्वी व्यक्तित्व को मृत्यु इस प्रकार से दबोच लेगी, यह सोचकर सारे शरीर में सिहरन-सी भर आई थी. . . परन्तु तभी हम सबने देखा कि वह युवा संन्यासी नदी की विपरीत धारा में उस व्यक्ति को खींच कर अपने कंधे पर लाद कर बहता हुआ किनारे की ओर आ रहा है; मेरे लिए तो यह सर्वथा अप्रत्याशित था कि लहरों के इस ताण्डव नृत्य में कोई बच जाय, परन्तु यहां संन्यासी अपने साथ उस व्यक्ति को भी ढोये चला आ रहा था, यह आश्चर्य. . . घोर आश्चर्य था!

संन्यासी का सारा शरीर लहरों से जूंझने के कारण थका हुआ था, परन्तु उसकी लम्बी और बलिष्ठ भुजाओं में बेहोश व्यक्ति पड़ा हुआ था। संन्यासी ने उसे जमीन पर लिटाया और फिर उसके सारे शरीर को दबाकर, विशेषकर पेट के बल लिटाकर उसके पेट से सारा पानी निकाल दिया, फिर नाक और मुंह में कृत्रिम सांस देते हुए संन्यासी को हमने देखा. . . तभी उस व्यक्ति ने आंखें खोल दीं। हम सब लोगों के चेहरे प्रसन्नता से खिल उठे और उस संन्यासी के प्रति मानवीय कृतज्ञता से भर गये।

उसे होश में आया देख संन्यासी उठ खड़ा हुआ, उसके सिर पर हाथ रखा, हम सबको एक क्षण के लिए देखा. . . और उसके होठों पर किंचित मुस्कराहट फैल गई। उस एक मुस्कराहट पर ही हम सबका जीवन शत-शत न्यौछावर हो गया. . . पर तभी वह संन्यासी एक तरफ भीगे वस्त्रों में ही बढ़ गया, न तो उसने किसी को धन्यवाद देने का अवसर दिया और न ही किसी प्रकार की कोई इच्छा ही बचाये रखी!

इतना निस्पृह जीवन विरले लोगों में ही होता है। अपनी प्रशंसा से दूर रहने वाले उस संन्यासी का एक और रूप मेरे सामने साकार हुआ,

कि यह साधना के क्षेत्र में तो अद्वितीय है ही, पौरुषता के क्षेत्र में भी इसकी कोई मिसाल नहीं है. . . इसकी भुजाएं, ऊष्मा से भरा हुआ वक्षस्थल और पुरुषोचित सौन्दर्य का साकार पुञ्ज तेजस्वी व्यक्तित्व अपने-आप में अद्वितीय है। इसके पास कुछ क्षण बिता देना ही जीवन का सौभाग्य है। खतरों से खेलना इस व्यक्ति का शौक है, मानवीयता की ऐसी मिसाल मिलना सहज सम्भव नहीं।

स्थान : सिद्धाश्रम

समय : प्रातःकाल

मेरे पूर्वजन्म के और इस जन्म के पुण्यों का उदय है, कि मैं सिद्धाश्रम तक पहुंच सका हूं। मैंने तो जीवन में कभी सोचा भी नहीं था कि मुझे कभी सिद्धाश्रम पहुंचने का अवसर भी प्राप्त हो सकेगा, पर आज इस सिद्धाश्रम की दिव्य धरा पर आकर मैं अपने-आप को रोमाञ्चित-सा अनुभव कर रहा हूं। यहां का कण-कण पवित्र, दिव्य और मनोहारी है, यहां की धरती पर लोटने को जी चाहता है, यहां के एक कण के बदले यदि पूरा जीवन भी न्यौछावर हो जाय, तो घाटे की बात नहीं!

मैं घूमता-फिरता 'सिद्धयोगा झील' के किनारे पहुंच जाता हूं, इतना स्वच्छ और पारदर्शी जल मैंने अपने जीवन में पहली बार देखा है! मैं देख रहा हूं कि यहां साधु-संन्यासी विचरण कर रहे हैं। युवा संन्यासी सन्ध्या-वंदन, अर्घ्य, जप-तप, ध्यान में लीन हैं। देवांगनाएं आस-पास विचरण कर रही हैं. . . और सारा वातावरण मनोहारी, मुग्ध और स्वप्निल-सा है, तभी मैं सिद्धयोगा झील के किनारे एक स्वच्छ स्फटिक शिला पर बैठे हुए संन्यासी को देख कर पहिचान लेता हूं, कि ये तो वही संन्यासी हैं, जिन्हें मैंने कनखल में देखा है, गोमुख पर साधनारत पाया है, हहराती नदी में छलांग लगाते हुए देखा है। यहां इनके स्वरूप को देखकर जीवन धन्य हो उठा. . . इतना दिव्य और तेजस्वी स्वरूप मैं पहली बार देख रहा हूं, यौवन और तपस्या की ज्योत्स्ना से आपूरित यह शरीर अपने-आप में अद्वितीय है।

देख रहा हूं, कि सामने संन्यासी और संन्यासिनियां बैठी हुई हैं,

और सभी उस योगी "निखिलेश्वरानन्द जी" के मुख से निकले हुए एक-एक शब्द को ध्यानपूर्वक सुन रहे हैं. . . शब्दों का प्रवाह ऐसा है, कि जी चाहता है, वहीं उसी स्थान पर हजार-हजार वर्षों तक बैठे रहें, वे बोलते रहें, हम सुनते रहें।

कई-कई विशेषताओं, गुणों और तत्त्वों से सम्पन्न योगीराज निखिलेश्वरानन्द जी को मेरा शत-शत वन्दन है।





जब पहली-पहली बार गुरुदेव मिले

गुरु तो शिष्य के घट में ही व्याप्त होते हैं, क्योंकि गुरु और शिष्य का सम्बन्ध नूतन और क्षणिक नहीं होता, अपितु यह तो जन्म-जन्मांतर का सम्बन्ध होता है। यह एक ऐसा सम्बन्ध है, जो कई वर्षों से, कई पीढ़ियों तक बना रहता है, यह अलग बात है, कि शिष्य के पूर्व जन्म कृत दोषों की वजह से गुरु-शिष्य मिलन में देर हो सकती है।

यहां कुछ ऐसे प्रसिद्ध साधकों के जीवन की घटनाओं का उल्लेख किया जा रहा है, जिन्हें जीवन में पहली बार गुरु-दर्शन हुए. . . और उस पहली बार में ही उन्हें यह अनुभव हुआ, कि जिनको हम खोज रहे थे, वे तो सामने ही हैं। गुरु को कहीं ढूंढने जाने की जरूरत नहीं है, वे तो बिजली की चमक के समान किसी भी क्षण आंखों के सामने कौंध सकते हैं, आवश्यकता केवल पारखी दृष्टि की है, कि हम उस विशेष क्षण में गुरु को पहिचान लें।

गुरु तो सामने ही खड़े थे

स्वामी योगानन्द

स्वामी योगानन्द देश के महत्त्वपूर्ण योगी और साधक रहे हैं,

उनका "क्रिया योग" अपने-आप में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और सुविख्यात रहा है। महात्मा गांधी ने भी इनसे क्रिया योग सीखने और उसे अपने जीवन में उतारने का प्रयास किया था।

उन्होंने गुरु से प्रथम साक्षात्कार का वर्णन अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "एक योगी की आत्मकथा" में विस्तार से किया है, यह एक बहुचर्चित और प्रसिद्ध पुस्तक रही है, जिसमें उन्होंने अपने अनुभवों का वर्णन लिखा है।

मैं बचपन से ही साधना-पथ पर आगे बढ़ने के लिए प्रयत्नशील था, यद्यपि मुझे न तो साधना का कोई ज्ञान था और न मैं इसके सम्बन्ध में ही कुछ जानता था, परन्तु अपने माता-पिता के साथ रहते हुए भी मेरे मन में बराबर छटपटाहट बनी रहती थी, कि मैं इस प्रकार से जीवन नहीं जी सकता, मेरे जीवन का उद्देश्य कुछ और ही है. . . और यह "कुछ और" क्या है– इसका मुझे ज्ञान नहीं था। मैं घण्टों अकेले बैठा-बैठा सोचता रहता था. . .

– "कौन मेरा मार्गदर्शक होगा?"

– "किस प्रकार से मैं अपने जीवन को पूर्णता दे पाऊंगा?"

– "किस तरीके से मैं अपने जीवन में सफलता प्राप्त कर सकूंगा?"

– ये प्रश्न मेरे मानस में ही बने रहते, न तो इनका कोई हल मुझे नजर आता और न मैं इस सम्बन्ध में कोई निर्णय ही ले पाता।

कुछ दिनों बाद मुझे ऐसा लगने लगा जैसे मैं संसार से कट-सा गया हूं, जब तक कोई मार्गदर्शक या गुरु नहीं मिलेगा, तब तक मेरे जीवन में यह बेचैनी बराबर बनी रहेगी. . . और धीरे-धीरे यह बेचैनी इतनी अधिक बढ़ गई, कि मैं अपने-आप को संभाल नहीं पा रहा था. . . और एक दिन अपने घर को मैंने छोड़ दिया, उस समय मेरी अवस्था तेरह या चौदह वर्ष की थी, मुझे ऐसा लग रहा था जैसे कि यह सब कुछ पूर्व नियोजित हो रहा है, कोई एक अदृश्य शक्ति मुझे बराबर अपनी तरफ खींच रही है. . . और मैं जिस तरफ भी बढ़ रहा हूं, उसका एक विशेष हेतु है।

मुझे यह विश्वास था, कि अवश्य ही मेरा कोई गुरु रहा होगा. . . इससे

पहले के जीवन में भी मैं गुरु-चरणों में जरूर बैठा होऊंगा, परन्तु बीच में व्यवधान आ जाने की वजह से मेरा गुरु से सम्बन्ध विच्छेद हो गया— जब तक मैं पुनः अपने गुरु से नहीं मिल लूंगा, तब तक मुझे किसी प्रकार की शांति नहीं मिल सकेगी. . . और मैं इसी उधेड़बुन में, गलियों में भटक रहा था।

एक दिन मैं वाराणसी में दशाश्वमेध की एक गली को पार कर रहा था, कि अचानक मुझे ऐसा लगा जैसे मेरी पीठ पीछे कोई भेदक दृष्टि डाल रहा है, मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि मेरी पीठ पर किसी की नजर है. . . कोई मुझे टकटकी लगाकर ताक रहा है!

मैं तुरन्त घूमा, तो देखा कि गली के छोर पर एक योगी खड़ा है— भगवे वस्त्र पहिने, हृष्ट-पुष्ट, गौर वर्ण और तेजस्वी आंखें। मेरे हृदय में एक बिजली-सी कौंधी, कि जिसे मैं पिछले कई वर्षों से खोज रहा हूं, अवश्य ही यह वही व्यक्ति हैं, मुझे ऐसा एहसास होने लगा, कि जैसे यही मेरे गुरु हैं, गुरु के अलावा यह व्यक्तित्व कोई अन्य हो ही नहीं सकता. . . और मैंने तीव्रता से दौड़कर उनके चरणों को पकड़ लिया, चरणों को पकड़ते ही मुझे मन में राहत-सी अनुभव हुई, मेरे दग्ध हृदय को ठंडक-सी मिली. . . और ठीक ऐसा ही लगने लगा जैसे मैं अपनी मंजिल को पा गया हूं।

उनका हाथ मेरे सिर पर था और उनके होठों से निकल रहा था— "मैं तो तुझे काफी समय से खोज रहा था, तू ने आने में इतनी देर क्यों कर दी". . .

ये शब्द सुनते ही मेरी आंखों से अविरल अश्रुबिन्दु बह-बह कर उनके चरणों को भिगोने लगे।

तुम्हारा मेरा सम्बन्ध तो वर्षों-वर्षों से है

स्वामी धीरेन्द्र बाबा

स्वामी विशुद्धानन्द जी देश के विख्यात योगी और साधक रहे हैं, सिद्धाश्रम से उनका निकट का सम्बन्ध रहा है और वे यदा-कदा सूक्ष्म-शरीर से सिद्धाश्रम आते-जाते रहे हैं। पण्डित गोपीनाथ कविराज ने इस सम्बन्ध में अपने कई ग्रंथों में विवरण और वर्णन दिया है; "मनीषी की लोक यात्रा" इस

दृष्टि से एक सफल और पठनीय पुस्तक है।

धीरेन्द्र बाबा उनके दीक्षित शिष्य थे, आगे चलकर धीरेन्द्र बाबा ने तीन सिद्धियां प्राप्त कीं और इस क्षेत्र में अन्य कई सफलताएं प्राप्त कीं, वे जग-विख्यात हैं।

यह उस समय की घटना है, जब विशुद्धानन्द जी वाराणसी नहीं आये थे और कौसानी के पास ही अपना साधना क्षेत्र बनाये हुए थे। धीरेन्द्र बाबा प्रारम्भ में 'कानूनगो' थे और नौकरी करते थे, जब उनका स्थानान्तरण कौसानी हो गया, तो उन्हें बड़ा अटपटा-सा लगा। उन्होंने अपने अधिकारियों से प्रार्थना की, कि उनका स्थानान्तरण रद्द कर दिया जाय तथा उन्हें नैनीताल में ही रहने दिया जाय, परन्तु अधिकारियों ने उसी दिन एक नया आदेश निकाला— "तुम्हें आज ही यहां से प्रस्थान कर देना है, और जल्दी-से-जल्दी कौसानी जाकर चार्ज ले लेना है।"

धीरेन्द्र बाबा ने अपने अनुभव को लिखाते हुए कहा है— "मैं भारी मन से अपने नये पद-स्थान की ओर घोड़े से यात्रा करता हुआ जा रहा था, उस समय तक कार आदि की सुविधायें उस क्षेत्र में नहीं थीं, और नैनीताल छोड़ने का मेरा बिलकुल इरादा नहीं था, मैं दस दिन बाद यात्रा करता हुआ कौसानी पहुंच गया।"

"जिस दिन मैं कौसानी पहुंचा, उसी दिन मैंने चार्ज ले लिया, मन बहुत ही उदास था, इसलिए शाम के समय मैं पहाड़ों की तरफ घूमने के लिए निकल पड़ा।"

"मैं कौसानी से लगभग एक मील ही गया होऊंगा, कि मुझे ऐसा लगा जैसे कि यह सारा स्थान मेरा परिचित-सा है, जबकि हकीकत में मैं पहले कभी भी कौसानी की तरफ नहीं आया था, पर मुझे वहां के पेड़, पहाड़ और छोटे-छोटे झरने सर्वथा परिचित-से लग रहे थे।"

"मैं थोड़ी ही दूर आगे गया होऊंगा, कि एक गुफा के किनारे एक तेजस्वी साधु बैठा हुआ था, उन्नत ललाट, लम्बे केश और भव्य व्यक्तित्व. . . पहली ही नजर में उनके चरणों में बैठने की इच्छा-सी होने लग गई थी, मैं लगभग बीस कदम ही दूर होऊंगा, तभी उस संन्यासी की आवाज मेरे कानों में पड़ी।"

– "धीरेन्द्र बाबू! रुको नहीं, इधर आ जाओ।"

मैं अपना नाम पुकारे जाने पर आश्चर्य-सा प्रकट कर रहा था, कि वे संन्यासी बोले– "घबराने की जरूरत नहीं है, मैंने ही तुम्हारा यहां स्थानान्तरण करवाया है, मैंने ही तुम्हारे अधिकारियों के मन में यह भावना पैदा की, कि तुम्हारा स्थानान्तरण यहां पर कर दिया जाय. . . और जब तुम आनाकानी कर रहे थे, तब मैंने ही तुम्हारे अधिकारी के हृदय में यह विचार पैदा किया, कि वे तुम्हें जल्दी-से-जल्दी यहां आने की आज्ञा दे दें।"

मैं अब तक गुफा के दरवाजे के पास पहुंच चुका था, मुझे वह गुफा परिचित-सी लगी, मुझे कुछ ऐसा लगा, कि जैसे मैं इस गुफा में पहले बैठ चुका हूं, तभी संन्यासी की आवाज सुनायी पड़ी–

–"धीरेन्द्र! क्या तुम इस गुफा को नहीं पहिचान पा रहे हो? यह वही गुफा है, जहां तुमने इससे पहले के जीवन में बैठकर साधनाएं की थीं, यह वही आसन है, जिस पर तुम बैंठते थे, वह रहा तुम्हारा कमण्डल जो उस किनारे पड़ा है, मैंने अब तक गुरु के नाते तुम्हारी ये सारी चीजें सहेज कर रखी हैं।"

मुझे सब कुछ याद आ गया– वह गुफा, वह आसन, वह कमण्डल सब कुछ परिचित-सा लगा. . . उसी क्षण मेरी अतीन्द्रिय बुद्धि जाग्रत हो गई और मैंने देखा, कि मैंने इससे पहले के जीवन में इसी स्थान पर बैठकर लक्ष्मी-साधनाएं की हैं, तब भी यही मेरे गुरु रहे हैं. . . और मैं प्रणिपात होते हुए उनके चरणों में लेट गया।

उन्होंने अत्यन्त स्नेह से मुझे ऊपर उठाया और अश्रुस्नात नेत्रों से देखते हुए बोले– "मैं कब से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूं, पिछले जीवन में जब से तुमने इस गुफा के पास देह छोड़ी थी, तब से आज तक मैं बराबर तुम्हारी प्रतीक्षा करता रहा हूं, मैं ही तुम्हारा गुरु हूं. . . और तुम पिछले जीवन में भी धीरेन्द्र ही थे।"

अतीन्द्रिय बुद्धि से उनकी एक-एक बात सत्य लग रही थी, मुझे सब कुछ प्राप्त हो गया था, जिसकी खोज पिछले पच्चीस वर्षों से मुझे थी. . . और मैं दूसरे ही दिन मुख्यालय को तार भेज कर सेवा-निवृत्त हो गया।

एक बिजली सी आंखों के सामने कौंध गई

स्वामी विवेकानन्द

स्वामी विवेकानन्द देश के उन महातपस्वियों में से एक हैं, जिन्होंने विदेशों में भी अपने देश की प्रतिष्ठा पूर्णता के साथ स्थापित की, उनका गुरु-मिलन भी दृष्टव्य है।

प्रारम्भ में विवेकानन्द को (जिनका बचपन का नाम नरेंद्र था) किसी मूर्ति या देवता आदि पर विश्वास नहीं था। एक दिन उन्होंने सुना, कि पास में ही एक काली-मन्दिर है और वहां एक गृहस्थ साधु रहते हैं, जिन्हें रामकृष्ण कहते हैं।

साथियों के कहने पर भी विवेकानन्द ने क़ोई उत्साह नहीं दिखाया. . . पर जितना ही ज्यादा वे इस विचार को दबाने का प्रयत्न करते, उतनी ही तीव्रता के साथ यह विचार उठता– "मुझे काली मन्दिर जाना है, और उन गृहस्थ तपस्वी के दर्शन करना है।"

– और इस प्रकार लगभग पन्द्रह-बीस दिन तक विवेकानन्द इस विचार को अन्दर ही अन्दर दबोचते रहे, पर जितना ही ज्यादा वे इस विचार को दबोचते, उतनी ही ज्यादा उनकी मिलने की इच्छा तीव्र होती गई. . . और एक दिन विवेकानन्द काली मन्दिर की तरफ बढ़ गये।

मन्दिर के अन्दर जाकर देखा, कि वहां काली की एक भव्य प्रतिमा स्थापित है, उसके सामने ही एक सामान्य-सा व्यक्ति बैठा है, जिसके चेहरे पर न तो किसी प्रकार की चमक दिख रही है और न ही ओजस्विता।

पर विवेकानन्द बार-बार उस चेहरे को देखने के लिए विवश होते गये, तीसरी और चौथी बार. . . रामकृष्ण विवेकानन्द को देखकर क्षणिक मुस्कराये. . . विवेकानन्द को ऐसा लगा जैसे उनकी आंखों के सामने कोई बिजली-सी कौंध गई हो। उनका मन कह रहा था, कि यही वह व्यक्तित्व है, जो मुझे पूर्णता दे सकता है, मेरे अकुलाहट भरे हृदय को सांत्वना दे सकता है. . . और वे यंत्रचालित से उनके चरणों के पास जाकर बैठ गये।

कब और कैसे तथा किस प्रकार वे रामकृष्ण के चरणों से लिपट पड़े, इसका कोई भान उन्हें नहीं रहा. . . जब चेहरा ऊपर उठाया, तो उनकी

दोनों आंखें आंसुओं से भरी हुई थीं. . . और सामने बैठा व्यक्तित्व परम तेजस्वी तथा दैदीप्यमान प्रतीत हो रहा था।

विवेकानन्द के मुख से निकला— "गुरुदेव!"

रामकृष्ण उनके सिर पर हाथ रख कर बोले— "पगले! अभी तक मां से दूर क्यों रहा, तुझे तो कभी का यहां आ जाना चाहिए था, मां तो तेरी रोज प्रतीक्षा करती रही है।"

विवेकानन्द ने अपने संस्मरणों में कहा है— "वह एक क्षण ही मेरे पूरे जीवन को प्रकाशित कर गया, ऐसा लगा कि जैसे मैंने सब कुछ पा लिया है, ऐसा अनुभव हुआ, जैसे यही मेरे जन्म-जन्मांतर के गुरु हैं, इन्हीं के सहारे मैं अपने मन की व्यथा तथा हृदय की छटपटाहट को दूर कर सकता हूं. . . और एक क्षण में ही वह सब कुछ हो गया, जिसकी मुझे वर्षों से प्रतीक्षा थी।

और मां ही मेरी गुरु बन गई

मां शारदा

आनन्दमयी मां का नाम भारतवर्ष में विख्यात रहा है. . . छल-कपट से दूर, शांत और सरल जीवन जीने वाली मां साधना के क्षेत्र में अग्रगण्य थीं। स्वामी विशुद्धानन्द जी से उनका निकट-सम्बन्ध रहा है. . . और सिद्धाश्रम से भी उनका व्यक्तिगत परिचय और स्नेह-सम्बन्ध बना रहा है।

प्रसिद्ध साधिका 'मां शारदा' देश की श्रेष्ठ साधिका हैं, और आनन्दमयी मां की शिष्या हैं। उनका प्रथम गुरु मिलन एक विलक्षण घटना थी, उनके ही शब्दों में. . .

— "मुझे बचपन से ही साधना-क्षेत्र में रुचि थी, मैं यह दृढ़ निश्चय कर चुकी थी कि मुझे विवाह नहीं करना है, तथा साधना-क्षेत्र में ही जीवन को पूर्णता देनी है।"

मैं माता-पिता के साथ ही रहती थी, इस बीच कई साधु-सन्तों से सम्पर्क हुआ, पर जितना ही ज्यादा इन साधुओं से मेरा परिचय होता, मन की अकुलाहट बढ़ती ही जाती, पता नहीं क्यों मेरा मन बार-बार

'आनन्दमयी मां' की तरफ जाने को होता।

मेरा मां से कोई पूर्व परिचय नहीं था, एक दिन मैंने सुना कि मां वाराणसी आई हुई हैं, मैं उनसे मिलने को चल दी, मेरा नौकर भी मेरे साथ ही था।

उन दिनों मां तीनतल्ला भवन में ठहरी हुई थीं। सुबह के लगभग दस बजे का समय था, मैं व्यथित और छटपटाहट भरे हृदय को लेकर मां से मिलने के लिए जा रही थी, पर मेरा एक मन यह भी कह रहा था, कि वहां जाने पर भी कुछ नहीं होगा— न तो अकुलाहट दूर होगी और न हृदय को सांत्वना ही मिलेगी; एक प्रकार से यह मिलना भी व्यर्थ ही जायेगा।

मन इसी प्रकार के विचारों में उलझा हुआ था. . . पर मेरे पैर उसी तरफ बढ़ रहे थे, जहां मां ठहरी हुई थीं।

जब मैं अन्दर गई, तो मां कमरे के बाहर आसन पर बैठी हुई थीं, सफेद साड़ी में वे देवी प्रतीत हो रही थीं. . . और उनके बाल पीठ पर उन्मुक्त रूप से फैले हुए थे।

अकस्मात ही मेरे पैरों में गति आ गई, मेरा गला भर आया. . . और दूसरे ही क्षण मैं बिना किसी प्रयास के उनकी गोदी में सिर रख फफक कर रो पड़ी, मेरी आंखों से अविरल अश्रु-धारा बह रही थी, मां का हाथ मेरे सिर पर और पीठ पर फिर रहा था. . . और मेरी सारी बेचैनी, सारी छटपटाहट आंसू बनकर मां के सीने को भिगो रहे थे।

ऐसा लग रहा था, कि मां से मेरा सम्बन्ध कई वर्षों से है, सैकड़ों वर्षों से मैं मां से परिचित हूं, यही तो मेरी मां हैं, गुरु हैं।

मां ने लाड़ भरे स्वर में कहा— "बेटी! मैं परसों से तेरा इन्तजार कर रही थी. . . तू आज आई है. . . तू वर्षों तक मेरे साथ रही है. . . मैं ही तेरी मां हूं. . . गुरु हूं।"

और मां के ये शब्द हजारों रूपों में मेरे तन-मन को अभिसिक्त कर गये।

वस्तुतः गुरु और शिष्य का सम्बन्ध कोई नया नहीं होता। शिष्य अपना शरीर बदलता रहता है, परन्तु वह शरीर बदलने पर भी गुरु को

नहीं भूल पाता, गुरु तो इस जीवन से नहीं, अपितु जन्म-जन्म से होता है. . . और वही गुरु उसे हर जीवन में मिलता रहता है, जिसके माध्यम से वह आगे की ओर अग्रसर होता है।

यह तो जीवन की एक ललक है, जो जीवन की किसी भी आयु में कौंध जाती है. . . और एक ही क्षण में पिछला जीवन आंखों के सामने साकार हो जाता है, उसे सामने खड़े गुरु स्पष्ट हो जाते हैं. . . और वह अपना सब कुछ उनके चरणों में समर्पित कर देता है।

यही वह क्षण होता है, जब वह इस जीवन को स्वर्णिम आयाम देने में समर्थ हो पाता है, यही यह बिन्दु है, जहां साधक इस जीवन को संवारने की दिशा में अग्रसर हो जाता है।

वस्तुतः गुरु-प्राप्ति ही जीवन की पूर्णता है. . . और इसमें जितना ही विलम्ब होता है, उतना ही पूर्णता-प्राप्ति में विलम्ब होता जाता है. . . जब जीवन के पुण्य उदय होते हैं, तभी ऐसा विचार पैदा होता है, तभी चमक कौंध जाती है. . . और हाथों में गुरु-चरण आ जाते हैं।





योगेश्वर निखिलेश्वरानन्द एक अनिवर्चनीय व्यक्तित्व

योगेश्वर निखिलेश्वरानन्द जी हिमालय की एक महान विभूति रहे हैं, जिनकी तपस्या और नेतृत्व-शक्ति से हिमालय मुखर और दैदीप्यमान हो सका। हिमालय के चप्पे-चप्पे से परिचित और दुर्गम तथा गहन स्थानों को भी अपने पैरों से नापने वाले ये महायोगी हिमालय की एक जीवन्त चेतना रहे हैं, जिनके प्रयत्नों से हिमालय के उच्चकोटि के साधक पूर्णता पा सके। इस योगी ने सर्वप्रथम ज्ञान को विज्ञान से जोड़ने का प्रयत्न किया और यह सिद्ध किया, कि प्रत्येक साधना को विज्ञान की कसौटी पर सिद्ध करके दिखाया जा सकता है, मात्र हिमालय में ही नहीं, अपितु देव-दुर्गम सिद्धाश्रम में भी उनका नाम अत्यन्त आदर और श्रद्धा के साथ लिया जाता है, हजारों-हजारों संन्यासी शिष्य इस महायोगी के संकेत पर अपने-आप को फना करने के लिए तैयार हैं। गृहस्थ जीवन में श्रीमाली जी के रूप में व्यक्त यह योगी एक अन्यतम व्यक्तित्व है।

बलिष्ठ और लम्बा-तगड़ा आर्यों की तरह शरीर, गौर-वर्ण, समुद्र की तरह विशाल वक्षस्थल, दिप्-दिप् करता तेजस्वी चेहरा, भव्य भाल, अजानुपर्यन्त लम्बी भुजाएं, सिर के पीछे गंगा की धाराओं की तरह लहराती हुई जटाएं, शरीर पर भगवे वस्त्र और पैरों में खड़ाऊं— अत्यधिक मनोहारी व्यक्तित्व है यह अलमस्त, फक्कड़,

वीतरागी और ज्ञान-विज्ञान के भण्डार एक ऐसे महान योगी का जिसकी साधनामय आभा से हिमालय दैदीप्यमान रहा है, जिसकी आंखों में पूरे संसार का दर्द और कुछ नया करने की चाह भरी हुई है, जिसके पांवों में दृढ़ता है; जिसने अपने सैकड़ों शिष्यों के साथ हिमालय के उन स्थानों पर जाने का प्रयत्न किया है, जो अत्यन्त कठिन व अलंघ्य कहे जाते थे, जिनके एक संकेत पर संन्यासी शिष्य अपना सब कुछ न्यौछावर करने को तत्पर हैं, जो केवल ज्ञान को ज्ञान ही नहीं मानते, अपितु इन्होंने ज्ञान को विज्ञान के साथ पूरी तरह से जोड़ने का प्रयत्न कर सफलता पाई है; जो अणिमा, महिमा आदि सिद्धियों का स्वामी होकर हिमालय के तेजस्वी संन्यासियों की बृहद् सभा के अध्यक्ष रहे हैं; जिनके हृदय में अपने शिष्यों के प्रति प्रेम का अथाह समुद्र लहरा रहा है. . . ऐसे अलमस्त, निरन्तर गतिशील व्यक्तित्व का नाम है— "महायोगी निखिलेश्वरानन्द जी"!

साठ वर्ष की अवस्था में मैंने कई साधनाएं सम्पन्न कीं और पिछले चालीस वर्ष एक योगी की तरह ही व्यतीत किये, पर मुझ जैसे व्यक्ति को भी इस महायोगी का शिष्य बनने हेतु जितने प्रयत्न करने पड़े, वे हिमालय को नंगे पांव पार करने के समान ही थे। हिमालय में तो इन योगियों, संन्यासियों के बीच एक कहावत बनी हुई है, कि सिद्धाश्रम जाना फिर भी सम्भव है, परन्तु इस महायोगी का शिष्य बनना तो अत्यधिक कठिन और दुर्लभ ही है, क्योंकि ये अपने शिष्य की जिस प्रकार से ठोक-बजाकर परीक्षा लेते हैं, उस कसौटी पर तो बहुत ही कम सौभाग्यशाली खरे उतर पाते हैं, मेरे पिछले कई जीवन के पुण्य रहे होंगे, कि तीन वर्षों के अथक परिश्रम के बाद मुझे इस महायोगी का शिष्य बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

जिस सिद्धाश्रम का होठों से नाम स्मरण करते ही पूरा शरीर पवित्र और पुलकित हो जाता है, उस सिद्धाश्रम के योगियों में भी यह महायोगी अत्यन्त ही सम्माननीय और श्रद्धास्पद है, कई योगी तो केवल एक झलक देखने के लिए ही अपनी साधना को बीच में खण्डित कर उठ खड़े होते हैं और उनकी चरण-धूलि अपने सिर पर लगाने को हर क्षण लालायित रहते हैं।

एक शिष्य होने के नाते मुझे इस तपोपुञ्ज के कई रूपों को देखने का अवसर मिला है— और इनका प्रत्येक रूप एक-दूसरे से बढ़-चढ़ कर है, जिस क्षेत्र में भी देखा जाय, ये व्यक्तित्व अपने-आप में पूर्ण हैं, वह क्षेत्र चाहे आकाश गमन प्रक्रिया का हो, ब्रह्मत्व साधना का हो, कठोरतम साधना का हो अथवा बर्फीले दुर्लंघ्य

पर्वतों को पार करने का हो— सभी रूपों में ये योगीश्वर श्रेष्ठ हैं और अन्यतम हैं। इन्होंने कई ऐसी लुप्त विद्याओं और साधनाओं को पुनर्जीवित किया है, जो मृतप्राय थीं, वस्तुतः इन्होंने जितना और जो कुछ किया है, वह सिन्धुवत है, इसका ऋण आने वाली कई पीढ़ियां भी शायद ही चुका सकेंगी।

हर समय मुस्कराते और खिलखिलाते इस व्यक्तित्व का गम्भीर और गहन रूप मैंने देखा है, संन्यासावस्था में, इनकी एक भृकुटी संकेत पर शिष्य कांप कर रह जाते थे। इनकी एक ही धारणा रही है, कि जो करना है, वह करना ही है, चाहे कितनी ही बाधाएं और समस्याएं आवें, बीच में या अपूर्ण छोड़ देना कायरता है, इसलिए शिष्य के प्रति भी यह योगी इतना ही एकाग्र है।

शिष्य में शिथिलता ये बर्दाशत नहीं कर पाते, साधना में न्यूनता रह जाय या असफल हो जायें, यह इनके लिए प्राणवेधन के समान है, इसीलिये तो इनकी कसौटी पर खरा उतरने वाला शिष्य अपने-आप में अजेय कहलाता है।

जिस दिन ये अपने शिष्य का हाथ थाम लेते हैं, उस दिन वह शिष्य अपने-आप को अद्वितीय समझने लग जाता है, क्योंकि जिस व्यक्तित्व की चरण-धूलि ही उच्चकोटि के साधकों के लिए दुर्गम है, उसका शिष्य बनना तो महान सौभाग्य की बता ही कही जा सकती है।

लगभग ग्यारह वर्षों तक मुझे इनके चरणों के साथ रहने का सौभाग्य मिला है, इस अवधि में हम शिष्यों को सैकड़ों अनुभव हुए हैं. . . और प्रत्येक अपने-आप में अन्यतम है—

शरीरं साधयति वा पातयति वा

बद्रीनाथ से लगभग अस्सी किलोमीटर आगे गौरी पर्वत पर उन दिनों स्वामी जी साधनारत थे। काफी साधनाएं सम्पन्न करने के बाद वे परकाया प्रवेश पर नवीन प्रयोग कर रहे थे और कोई ऐसी युक्ति निकालने के लिए प्रयत्नशील थे, जिससे कि परकाया प्रवेश सुविधाजनक हो सके, इसके लिए कठिन और विलक्षण साधना करने की आवश्यकता थी, हम तीन शिष्य और भद्रा बहिन उनके साथ थे, सही अर्थों में उस स्थान पर गुफाओं में रहते हुए भी शीत के प्रकोप से हम सब आतंकित थे, पर इस बर्फीले तूफान में भी वे उस श्रेष्ठतम साधना को स्वयं ही पूरा करने के लिए कृत संकल्प थे, शरीर पर मात्र एक लंगोटी लगाये यह साधक बर्फीले तूफान

के बीच भी अडिग साधनारत था, साधना प्रारम्भ करने से पूर्व दबी जबान से निवेदन भी किया था, कि यहां बर्फीली आंधियां चलती रहती हैं, और आप निर्वस्त्र साधना करने को उद्यत हैं, ऐसी स्थिति में. . . और हमारे आगे के शब्द कहीं खो गये. . .

तब उन्होंने करुणापूरित नेत्रों से हमें देखते हुए कहा था, साधना तपस्या का ही एक भाग है, "शरीरं साधयति वा पातयति" शरीर या तो सिद्धि प्राप्त करेगा या समाप्त हो जायेगा, इन दोनों के बीच की कोई स्थिति साधक के लिए ग्राह्य नहीं है— और इस दुःसह्य बर्फीले तूफान में भी इस दुर्जेय साधक ने कठिन साधना को सम्पन्न कर परकाया प्रवेश की उस नवीनतम पद्धति को खोज निकाला, जो हिमालय के योगियों में 'निखिल-साधना' के नाम से जानी जाती है; इस साधना में योगीराज ने विश्वामित्र की सूक्ष्म आत्मा से सम्पर्क स्थापित किया, यह इस नवीन साधना की अडिगता और सहनशक्ति का जीवन्त प्रतीक था, जिसे हम सबने अनुभव किया।

रोम-रोम गुरु उचारे

कठिन साधना, तपस्या के बाद मुझे सिद्धाश्रम में प्रवेश की अनुमति प्राप्त हुई थी, पूज्य गुरुदेव की प्रत्येक कसौटी और परीक्षा में मैंने खरा उतरने का निश्चय कर लिया था; आठ वर्षों की भीषण परीक्षा के बाद ही मुझे उनके साथ पहली बार सिद्धाश्रम में जाने का अवसर प्राप्त हुआ था।

आगे-आगे वह तेजस्वी पुञ्ज स्वामी जी चल रहे थे और मैं यथासम्भव इनके पीछे-पीछे गतिशील था, मैंने देखा कि सिद्धाश्रम एक अनिवर्चनीय, दिव्यस्थान है, जो कि वास्तव में ही उच्चकोटि के संन्यासियों के लिए दिव्य, पवित्र और पूर्णाधार है, कई सौ वर्षों की आयु प्राप्त साधकों को विचरण करते हुए मैंने वहां देखा और देखा कि हजारों साधक और तपस्वी वहां साधनारत थे; मैंने पहली बार यहां महाभारत में वर्णित कृपाचार्य, द्रोण और भीष्म पितामह को साधनारत देखा, गुरुदेव ने एक संकेत से मुझे युधिष्ठर को भी दिखाया, जो पिछले कई वर्षों से ध्यानस्थ थे और जिनके शरीर पर बर्फ की हल्की-सी परत जम गई थी।

मैंने देखा कि तपस्वी योगीराज निखिलेश्वरानन्द जी को प्रत्येक योगी देखने के लिए व्याकुल हैं, कई साधक तो अपनी साधना को बीच में ही खण्डित कर, उनके

दर्शन और चरण-धूलि को प्राप्त करने के लिए उठ खड़े हुए थे. . . और यह तेजस्वी पुञ्ज अविराम द्रुत गति से उन साधकों के बीच बढ़ता जा रहा था— अपने गुरुदेव परम पूज्य श्री सच्चिदानन्द जी से मिलने के लिए।

— तभी मैंने देखा एक तेजस्वी शक्ति-पुञ्ज को, जो वस्तुतः देवता के समान धीर-गम्भीर और करुणापूरित थे, स्वामी जी उन्हें देखते ही दौड़कर चरणों में लिपट गए और इस प्रकार एकाकार हो गये, जैसे गंगा समुद्र में अस्तित्वहीन हो जाती है, मुंह से एक ही ध्वनि निकल रही थी— "त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेवं समर्पयेत्" और मैंने आश्चर्य से देखा कि स्वामी जी का मुंह ही नहीं, अपितु शरीर के रोम-रोम से गुरुदेव की ध्वनि निःसृत हो रही थी।

मैंने पहली बार शिष्य की अस्तित्वविलीनता देखी. . . और देखा, कि किस प्रकार शिष्य अपने रोम-रोम में गुरुदेव को स्थापित कर सकता है, कुछ ही क्षणों में योगीराज सच्चिदानन्द जी ने उन्हें उठाकर अपने सीने से लगा लिया. . . ऐसा लगा जैसे दो समुद्र परस्पर मिल गये हों— और सारा वातावरण एकबारगी ही थम गया हो।

गुरु-शिष्य का यह अद्वितीय मिलन आज भी मेरी आंखों में प्रतिबिम्बित है, जो मेरी धरोहर है।

मेरा कुछ भी नायं

उन दिनों योगीराज सर्वथा निर्द्वन्द्व, निर्मुक्त अवस्था में थे, उन्होंने भोजन और फल ग्रहण करना छोड़ दिया था, शरीर पर मात्र एक लंगोटी और हाथ में दण्ड था, जिससे कि पहाड़ों पर चढ़ते-उतरते समय उन्हें सुविधा रहे।

एक बार बातचीत में उन्होंने बताया था, कि योगी मोहग्रस्त नहीं होता, क्योंकि वह सबका होते हुए भी किसी का नहीं होता, न वह किसी से सम्पृक्त होता है और न ही वह किसी से सम्पर्क रखता है।

एक दिन अलकनन्दा के किनारे हम चार-पांच शिष्य और गुरुदेव विश्राम कर रहे थे, संध्या घिरने लगी थी और हमें ऊपर देव-पर्वत स्थित गुफा तक पहुंचना था।

वे चट्टान से उठे और बोले— "महेश! ला, मेरा दण्ड दे, प्रयत्न कर हमें जल्दी ही ऊपर पहुंच जाना है।"

मेरे मुंह से निकल गया– "दण्ड! और आपका?"

. . .एक खटका-सा हुआ, जैसे कोई बात उनके मर्म को छू गई हो. . .

बोले– "ठीक कहता है तू, दण्ड के प्रति भी यह मोह योगी के लिए उचित नहीं है।"

. . .कहते-कहते उन्होंने दण्ड अलकनन्दा में फेंक दिया और द्रुत गति से पर्वत उपत्यका की ओर आगे बढ़ गये।

मैंने उस दिन त्याग का पहला पाठ सीखा, कि योगी को तो लकड़ी के टुकड़े से भी मोह नहीं रखना चाहिये, इसके बाद उन्होंने कभी भी दण्ड को स्वीकार नहीं किया।

शून्य ही मेरा आधार

उस दिन दीपावली का पर्व था और हम लगभग तीन सौ शिष्य गुरु भाई-बहिन गुरुदेव के पास, गंगोत्री से आगे गोमुख के पास एक विशाल चट्टान पर बैठे हुए थे, चारों तरफ प्रकृति का साम्राज्य था और वातावरण हास्य-विनोद से परिपूर्ण था, उस दिन गुरुदेव अत्यधिक आनन्दित थे, इसलिए हमारे ही एक गुरुभाई ने डरते-डरते आंखें नीचे किये निवेदन किया. . .

–"गुरुदेव! जंगल के घास-पात खाते-खाते काफी दिन हो गये हैं, आज तो दीपावली है, कुछ ऐसा सुस्वादु भोजन मिले, जिससे हम लोग भी दीपावली को पहचानें।"

गुरुदेव ने एक क्षण के लिए उनकी तरफ ताका, तो हम सब सन्न रह गये, पर दूसरे ही क्षण उनके चहेरे पर मुस्कराहट दौड़ गई।

बोले– "अच्छा! आज दीपावली के अवसर पर गुरु की तरफ से शिष्यों को भोज दिया जायेगा, आप सभी पंक्तिबद्ध बैठ जायें।"

हम सभी गुरुभाई-बहिन पंक्तिबद्ध बैठ गये, सामने गुरुदेव व्याघ्र-चर्म पर आंखें बन्द किये बैठे थे, दो-तीन मिनट बीते होंगे, कि सभी साधकों के सामने चांदी की थालियां आ गईं, एक थाली में छः कटोरियां और बाहर एक गिलास भी आ गया, ऐसा प्रतीत हो रहा था कि जैसे कोई अदृश्य हाथ हमारे सामने थालियां रख रहा हो!

कुछ ही क्षणों के बाद थाली में बिलकुल ताजा और गर्म हलवा, पूड़ी, चावल, खीर और अन्य व्यंजन परोसे जाने लगे, छः या सात तरह की सब्जियां थीं, जिनमें अभी तक भाप निकल रही थी, हम आश्चर्य से थाली में आते हुए व्यंजन देख रहे थे, कि गुरुदेव ने आंखें खोल दीं. . . उनके सामने भोजन करना कुछ अटपटा-सा लग रहा था, हमारे संकोच को गुरुदेव ताड़ गये।

बोले– "मैं उधर चक्कर लगाकर आता हूं, तुम्हें व्यक्तिगत रूप से जिस-जिस व्यंजन की आवश्यकता हो उच्चारण कर लेना, व्यंजन तुम्हारी थाली में आ जायेगा।"

गुरुदेव तो उठ कर चले गये, पर हमारे लिए यह आश्चर्य था, कि जो शिष्य जिस व्यंजन का उच्चारण करता, वही व्यंजन उसकी थाली में आ जाता! हमारे लिए यह सब आनन्ददायक और आश्चर्यजनक था, कुछ ही देर में जब गुरुदेव वापिस लौटे, तब तक हम पण्डों की तरह छक कर तृप्त हो चुके थे।

इसके बाद तो दीपावली कई बार आई और चली गई, पर वह आनन्द, वह मस्ती फिर प्राप्त ही नहीं हो सकी. . . और उस दिन मैंने जाना कि शिष्य के प्रति कितनी करुणा और अपनत्व उनके हृदय में है।

मंत्र मूलं गुरोर्वाक्यम्

उस दिन हम सब शिष्य-शिष्याएं गुरुदेव के साथ बद्रीनाथ से बत्तीस मील आगे नर-नारायण पर्वत पर बैठे हुए थे, हम सब जिस विशाल चट्टान पर बैठे हुए थे, वह खाई के किनारे थी, वह सैकड़ों फीट गहरी खाई भय पैदा करने वाली थी।

तभी एक युवा संन्यासी घूमते-घामते वहां आ पहुंचे, जिनका नाम नरहरि था, बोले– "मैं पिछले चार-पांच वर्षों से आपके दर्शन के लिए लालायित था, आज मेरी इच्छा आपके दर्शन कर पूरी हुई है, मैं आपकी शिष्यता स्वीकार करना चाहता हूं।"

गुरुदेव ने एक क्षण के लिए उस आगंतुक संन्यासी को अपनी आंखों में तोला और कहा– "मेरा शिष्य बनना तो तलवार की धार पर ही चलना होगा, संन्यासी!"

–"आप आज्ञा दें गुरुवर! आज भले ही न सही, पर कई वर्षों बाद भी

मैं आपकी कसौटी पर खरा उतर कर शिष्य बन सका, तो वह दिन मेरे लिए सौभाग्य की बात होगी, आपकी प्रत्येक आज्ञा मेरे लिए ब्रह्म वाक्य है।"

"तो तुम इसी समय इस पहाड़ी पर से इस अतल खाई में छलांग लगा दो।" —विनोद के साथ गुरुदेव ने मुस्कराते हुए कहा।

और हम सब संन्यासी शिष्य-शिष्याएं यह देखकर सन्न रह गये, कि उस युवा संन्यासी नरहरि ने गुरुदेव की आज्ञा मुंह से निकलते ही चट्टान पर से उस खाई में छलांग लगा दी, हमारे साथ ही साथ गुरुदेव भी यह देखकर अवाक् रह गये और एकदम से उठ खड़े हुए, साथ ही साथ हम सब भी उठ खड़े हुए!

गुरुदेव ने कहा— "कुछ शिष्य तुरन्त नीचे जाकर नवागन्तुक संन्यासी की देह ऊपर ले आओ।"

आठ-दस संन्यासी शिष्य नीचे लपके और आधे घण्टे में नवागन्तुक संन्यासी नरहरि की क्षत-विक्षत लाश लाकर गुरुदेव के चरणों में रख दी, इतनी ऊंचाई से गिरने के कारण जगह-जगह से शरीर कट गया था, और शरीर शांत हो गया था!

गुरुदेव कुछ देर ध्यानस्थ हुए और ध्यान-मुद्रा में ही नरहरि की क्षत-विक्षत लाश पर हाथ फेरा, तो उसका पूरा शरीर सहज स्वाभाविक रूप में आ गया. . . और जब आंखें खोलकर गुरुदेव ने हुंकार भरते हुए उसके मुंह पर फूंक मारी, तो वह अलसा कर उठ बैठा, जैसे कुछ हुआ ही नहीं था।

और इस एक घटना ने नरहरि को शिष्य बना दिया, आगे चलकर नरहरि स्वामी उच्चस्तरीय साधक सिद्ध हुए, जिन्हें आज भी हिमालय के साधक नमन करते हैं।

तदपि तव गुणानामीश पारं न याति

उन दिनों हम कुछ शिष्य-शिष्याएं गुरुदेव के साथ अमरनाथ की यात्रा पर थे. . . हमने जी भर कर भगवान् शंकर की स्तुति की, रुद्राभिषेक कर महिम्न स्तोत्र का पाठ किया और गुफा के बाहर आकर चट्टान पर बैठ गये, हम सब आज अत्यधिक प्रसन्न थे, भगवान् अमरनाथ पर चर्चा चल रही थी, कि तभी एक कोढ़ी व्यक्ति भगवान् के दर्शन करने के लिए आया, पूरा शरीर जर्जर. . . जगह-जगह से

कोढ़ की वजह से पीब निकलती हुई. . . आंखें धंसी हुईं और शरीर से निकलती हुई दुर्गन्ध ऐसी की नाक फट रही थी, वह कोढ़ी हम लोगों के पास आकर बैंठ गया. . . सारा वातावरण दुर्गन्ध के मारे भभक पड़ा, चार-छः संन्यासी शिष्य-शिष्याएं उठकर एक तरफ हो गये!

उसके हाथ में ऐल्यूमिनियम का कटोरा था, जिसमें कुछ खाद्य पदार्थ था, पर वह लार-थूक-पीब से भरा हुआ था. . . उसे देखकर ही घिन-सी आ रही थी!

गुरुदेव ने दो क्षण के लिए आंखें बन्द कीं और तुरन्त उठकर उस कोढ़ी से लिपट पड़े. . . हम सब हतप्रभ, आश्चर्यचकित. . . यह गुरुदेव क्या कर रहे हैं. . .!

दूसरे ही क्षण गुरुदेव का मेघ-सा गम्भीर स्वर फूट पड़ा. . .

असित गिरि समं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरु वर शाखा लेखनी पत्रमुर्वी
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति।

हे प्रभु! यदि पूरे हिमालय के वन प्रान्तर पेड़ों की लेखनी बना दें, समुद्र को स्याही पात्र बना कर विधाता जीवन भर आपके गुणों को लिखना चाहे, तब भी वह पार नहीं पा सकता, फिर हम तो किस श्रेणी में हैं, नाथ!

और दूसरे ही क्षण वह कोढ़ी भगवान् शंकर के रूप में सामने खड़े थे, व्याघ्राम्बर, जटाजूट, त्रिशूल, त्रिपुण्ड. . . सर्पमाल वेष्टित भगवान् अमरनाथ।

. . .और हम तो धन्य-धन्य हो गये उस दिन. . . जीवन का सारा संचित पुण्य गुरुदेव की कृपा से एकबारगी ही सार्थक हो गया. . . भगवान् शंकर के दर्शन कर इन चाक्षुष नेत्रों से. . . हमारा शरीर, मन और जीवन ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण प्रकृति उस क्षण महक रही थी।

शिष्यं हि दाक्षणे सदा

एक तरफ मैंने पूज्य गुरुदेव का शांत और स्थिर स्वरूप देखा है, वहीं उनके क्रोध और प्रचण्ड रूप को भी मैंने अनुभव किया है, उनका क्रोध तो पूरे हिमालय

में विख्यात था, जब वे क्रोधित अवस्था में होते थे, तो ऊंचे से ऊंचा योगी और साधक भी उनके सामने जाने की हिम्मत नहीं करता था।

मैं अपना ही उदाहरण दूं— एक साधना जो कि चौदह दिनों में सम्पन्न होनी थी, पर आसन-दृढ़ता न होने की वजह से मैं बीच-बीच में आसन से उठ जाता था, जिससे समय पर साधना पूरी न हो सकी।

जब गुरुदेव को पता चला, कि मैं निर्धारित समय में साधना पूर्ण नहीं कर सका हूं, तो उन्होंने मुझे बुलाया और मेरी विफलता से दुःखी और क्रोध उत्तप्त गुरुदेव ने कहा— "अभी निकल जा मेरे पास से, मुझे तुम्हारी जरूरत ही नहीं, कायर और कमजोर शिष्यों से मैं सम्बन्ध ही नहीं रखना चाहता, असफलता और पराजय मेरे शिष्यों के शब्दकोश में नहीं है।"

— और कहते-कहते अपने हाथ की छड़ी से प्रहार करना शुरू कर दिया; मैं उनके प्रहार अपने शरीर पे झेल रहा था. . . और सहन करते हुए भी सर्वथा मग्न था, मेरे अन्य सभी गुरु भाई दूर वृक्षों की ओट में खड़े यह सब देखकर भी चुप थे, किसकी हिम्मत थी कि उनके क्रोध के सामने आकर खड़ा हो सके. . . और पीटते-पीटते जब छड़ी टूट गयी, तो पैरों की ठोकर से मुझे एक तरफ दुत्कार दिया, पर मैं फिर भी शांत था, क्योंकि अपराध मेरा ही था. . . और उस अपराध का दण्ड मुझे मिल रहा था।

वे क्रोध की उत्तप्त अवस्था में मुझे छोड़कर एक तरफ निकल गये, पर आठ-दस कदम ही चले होंगे, कि वापिस लौट पड़े और मुझे अपनी गोद में उठा लिया करुणापूरित हाथ मेरे सारे शरीर पर फेरने लगे; उनकी आंखों से जलकण छलक रहे थे. . . पर मुझे तो सब कुछ मिल गया था, उनकी गोद का स्पर्श मेरी विफलता के बाद ही मुझे मिला था, इससे ज्यादा और बड़ा सौभाग्य क्या हो सकता है!

परन्तु उस दिन मैंने जाना कि उनके कठोर हृदय के पीछे भी एक शांत, सुखद गंगा प्रवाहमान है. . . और इस घटना का ही परिणाम हुआ, कि बाद के वर्षों में मैं एक बार भी अपनी साधना में असफल नहीं हुआ।

हम शिष्यों के पास उनके सैकड़ों अनुभव हैं और प्रत्येक अनुभव हमारे लिए सुखद थाती है, हमने उन्हें उदास और चिन्तातुर देखा है, निर्ममता से शिष्यों पर प्रहार करते देखा है, तो उसकी थोड़ी-सी तकलीफ पर उन्हें आंसू बहाते भी अनुभव किया है, उनकी मुस्कराहट, खिलखिलाहट तो हमारे लिए स्वर्णिम थाती है; दुर्लंघ्य

पहाड़ों पर सहजता से चढ़ते हुए हमने देखा है. . . और अत्यधिक श्रम करने के बाद भी उनके तरोताजा चेहरे को देखकर हमें सुखद आश्चर्य हुआ है! शिष्यों के साथ वे गुरु होते हुए भी सहयोगी हैं, उच्चकोटि के योगियों के लिये वे बड़े भाई के रूप में पथ-प्रदर्शक हैं और साधकों के लिये वे अनुकरणीय आदर्श हैं।

वे दिन और वे रातें हमारे लिये अत्यधिक सुखदायक और मस्ती भरी थीं, कि जब चांदनी रातों में गंगा-किनारे पहाड़ों की ऊंची चट्टान पर हम सब बैठे होते, हमारे पूज्य गुरुदेव अपनी सम्मोहन वाणी से साधना की बारीकियों को समझाते थे, उनके साथ उठते-बैठते और विचरण करते थे. . . वह एक-एक पल हमारे लिए स्वर्णिम था।

मैंने उनकी विदाई का दृश्य भी देखा है, जब परम पूज्य गुरुदेव योगीराज सच्चिदानन्द ने उन्हें पुनः गृहस्थ जीवन में जाने के लिए आज्ञा दी. . . और यह आज्ञा जहां उनके लिये असहनीय थी, वहीं हमारे लिये तो मरणतुल्य थी, वे किसी भी प्रकार से हम शिष्यों से अलग होना नहीं चाहते थे, पर एक विशेष कर्त्तव्यपूर्ति के लिये गुरुदेव की आज्ञा भी उनके लिए शिरोधार्य थी।

और उस दिन हम लगभग दस हजार संन्यासी शिष्य-शिष्याएं अश्रुपूरित नेत्रों से हाथ जोड़कर उनके सामने खड़े थे, हमारे शरीर का रोम-रोम उन्हें रोकने के लिए आवाज दे रहा था. . . पर समुद्र को कौन रोक सका है! उनकी आंखें डबडबा आई थीं, और हम सब सिसकियां भर रहे थे. . .

संन्यासिनी बहिनों ने तो रास्ते के दोनों तरफ लेटकर, अपने सिर के बाल खोलकर फैला लिये थे, कि गुरुदेव ज़ाना ही चाहते हैं, तो इनके ऊपर से होकर जायें. . . आंखे भरी हुई थीं. . . शरीर रोमाञ्चित था. . . और हम सब पर तो वज्रपात-सा हो गया था!

उन्होंने रुंधे कंठ से शीघ्र ही वापिस संन्यासी रूप में आने का आश्वासन दिया और सवेग आगे बढ़ गये, सारी दिशाएं वन्दन कर रही थीं, वातावरण बोझिल हो गया. . . और एक-एक सांस सिसकारी में परिवर्तित हो गई थी।

आज इतने वर्ष हो गये, हम सब उनकी झलक देखने के लिए तड़प रहे हैं; उनकी आज्ञा है, कि किसी भी हालत में गृहस्थ जीवन में उनके पास आकर नहीं मिलना है. . . और इन्हीं शब्दों से बंधे हम सब विवश हैं, पंगु हैं, बेबस हैं; वे दिन और वे क्षण हमारे लिये स्वप्न बन गये हैं, हम सभी भाई-बहिन प्रत्येक श्वास के

साथ उम्मीद कर रहे हैं, कि वे आयेंगे और हम सब पुनः सनाथ हो सकेंगे, हम तो उन गृहस्थ शिष्यों के भाग्य पर ईर्ष्या कर रहे हैं, कि उन्हें पूज्य गुरुदेव का सान्निध्य प्राप्त हुआ है।

पूर्वजन्म के सम्बन्ध ही वास्तविक सम्बन्ध होते हैं

उन दिनों स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी पुनः गृहस्थ जीवन में आने की तैयारी कर रहे थे, दादा गुरु ने आज्ञा दे दी थी, कि निश्चित अवधि के लिए पुनः गृहस्थ में जाना ही है, और समाज में इस प्रकार की नैतिक, आध्यात्मिक चेतना जाग्रत करनी है, जिससे कि वह लुप्त व गूढ़ ज्ञान पुनः सही प्रकार से प्रकाश में आ सके।

पर निखिलेश्वरानन्द जी खिन्न थे, उन्हें हिमालय-जीवन को छोड़कर जाना मानसिक रूप से कष्टप्रद अनुभव हो रहा था, उससे भी ज्यादा हम शिष्य लोग संतप्त थे. . . उनके जाने की कल्पना मात्र से ही सिहरते जा रहे थे।

उस दिन गुरुदेव अत्यन्त चिन्तित थे, मेरे पूछने पर बताया— "मैं श्याम को ढूंढ रहा हूं, पिछले छः जीवन से वह मेरा शिष्य है, इस बार मृत्यु के बाद उसकी आत्मा से पुनः सम्पर्क नहीं हो पाया है, पर उसे मुझे ढूंढ ही निकालना है, उसे आगे के पथ पर अग्रसर करना है, इस सातवें जीवन में वह अवश्य पूर्णता प्राप्त कर लेगा और उसे ब्रह्मत्व-प्राप्ति हो जायेगी" — यों कहते-कहते स्वामी जी ने दोनों भुजाएं उठा लीं, और धीरे-धीरे चारों दिशाओं की तरफ घूमने लगे, जैसे कि कोई 'एरियल' हो, जिसके माध्यम से वह आत्मा से सम्पर्क स्थापित कर रहे हों।

लगभग तीन दिन ऐसे ही बीत गये, चौथे दिन उनके चेहरे पर संतोष के भाव झलक आये, जैसे कि उन्होंने उस आत्मा से सम्बन्ध स्थापित कर लिया हो, बोले— "श्याम की आत्मा से सम्पर्क हो गया है, वह वाराणसी में है, मैंने उसे भावना देकर बुलाया है, वह आजकल में ही आ जायेगा।"

तीसरे ही दिन एक दीन-हीन ब्राह्मण उधर आ निकला. . . दुबला-पतला अपने-आप में सर्वथा अनजान. . . पर स्वामी जी को देखते ही जैसे उसे सब कुछ याद आ गया हो, दो-चार मिनट तो अचकचा कर खड़ा रहा. . .

गुरुदेव ने उसके सिर पर हाथ फेरा और हाथ फेरते ही उसे सब कुछ याद हो आया— वह स्थान, जहां पर वह साधना करता था, गुरुदेव . . . सब कुछ।

वह बोला— "यह क्या किया नाथ! तेईस साल बरबाद हो गये. . . मैं तो सर्वथा विस्मृत था, गरीबी, गृहस्थी में खोया हुआ. . . दीन-हीन अध्यापक का जीवन जीने वाला. . .!"

गुरुदेव बोले— "मैंने ही तुझे बुलाया है, यही वह स्थान है, जहां तू साधना किया करता था, यही तेरा आसन है, और यहीं तुझे आगे साधनारत होना है— जा, नौकरी छोड़कर वापिस आ जा।"

. . .यही श्याम आगे चलकर योगी श्यामानन्द बने, जो ब्रह्मत्व सिद्धि प्राप्त कर सिद्धाश्रम के श्रेष्ठ योगियों में अपना नाम गौरवमय बना सके।

कुण्डलिनी दर्शन

उस दिन रविवार था, हम सब शिष्य गुरुदेव के सामने गंगोत्री के तट पर बैठे हुए थे, सामने चट्टान पर अधलेटे से स्वामी जी प्रश्नों के उत्तर दे रहे थे। बात चल पड़ी कुण्डलिनी पर।

गुरु भाई कार्तिकेय ने पूछा— "गुरुवर! कुण्डलिनी से सम्बन्धित चक्र, दल आदि का विवरण है, यही नहीं अपितु दल की पंखुड़ियों की संख्या और रंग तक बताया गया है. . . क्या यह सब सही है?"

गुरुदेव मुस्कराये, बोले— "देखना चाहते हो?"

—और वे सामने सीधे बैठ गये, श्वासोत्थान कर उन्होंने ज्योंही प्राणों को सहस्रार में स्थित किया, कि हम लोगों ने मूलाधार से लगाकर आज्ञा चक्र तक के सभी चक्र कमल और उनका प्रस्फुटन साफ-साफ देखा। सभी कमल विकसित थे, और योग ग्रंथों में जिस प्रकार से इन चक्रों व कमलों के रंग, बीज, ब्रह्म आदि वर्णित हैं, उन्हीं रंगों में वे उत्थित चक्र देखकर आश्चर्यचकित रह गये. . . सब कुछ साफ-साफ दर्पण की तरह दिखाई दे रहा था!

पूज्य गुरुदेव द्वारा इस कुण्डलिनी दिग्दर्शन पर हम सब आश्चर्य के साथ-साथ श्रद्धानत थे।

यह शरीर ही मन्दिर है प्रभु!

गुरुदेव! आप गृहस्थ जीवन में जा रहे हैं, इस बात का हमें दुःख नहीं है, आपके जीवन के पृष्ठों को पढ़कर हम शिष्यों में सहन करने की क्षमता आ गई है, पर दुःख इस बात का है, कि आपने जितना और जो कुछ हमें दिया है, उसके प्रत्युत्तर में हम आपको न कुछ दे सके हैं, और न सेवा कर सके हैं, यही टीस हमें हर क्षण सालती रहेगी, यही फांस हमारे कलेजे में चुभी रहेगी।

हम तो पुजारी हैं, आपके साकार मन्दिर के प्रभु! आपका पूरा शरीर एक पवित्र मन्दिर है देव! आपके पैर उस मन्दिर के स्तम्भ हैं; आपका विशाल वक्षस्थल मन्दिर का मुख्य भाग है, जहां देवता स्थापित हैं; आपकी खिलखिलाहट मन्दिर का सुमधुर घंटा-घड़ियाल वाद्य यंत्रों का निनाद है; अपकी अमृत वर्षिणी आंखों से हम तृप्त होते हैं; आपके शब्द हमारे लिए वरदान हैं. . . और आपके शरीर का रोम-रोम हमारे लिए पवित्र अर्चन-कण हैं, जिसकी सेवा, पूजा हमारा अभीष्ट है; आपके जाने के बाद हम किसकी छांह में बैठेंगे, किस मंदिर की पूजा करेंगे, किस प्रकार चरणामृत-पान करेंगे, कैसे जियेंगे प्रभु! हम तो अनाथ हो जायेंगे. . . बावरे. . . व्याकुल. . . पागल. . . और जीते जी मृतवत् हो जायेंगे देव!. . . कहते-कहते संन्यासी शिष्य फफक पड़े, रो पड़े. . . और स्तब्ध-सी खड़ी प्रकृति ने देखा, कि चट्टानवत् निखिलेश्वरानन्द जी की आंखों से भी इस विरह-व्यथा के क्षणों में अश्रुकण ढुलक पड़े।

कहां आपका संन्यासी, प्रचण्ड उद्धर्ष रूप, कि ऊंचे से ऊंचा योगी भी कुछ क्षण आपके पास बैठने के लिए तरसता है। हम इतने वर्षों से आपके संन्यासी शिष्य हैं, आपके साथ रहे हैं, आपका क्रोध देखा है, प्रचण्ड व उग्र रूप देखा है और यहां आपका गृहस्थ रूप देख रहे हैं; आश्चर्य होता है आपके इन दोनों रूपों को देखकर, हम संन्यासी शिष्यों में इतने वर्षों तक साथ रहने के बावजूद भी इतनी हिम्मत नहीं, कि आपके सामने खड़े होकर, आंख में आंख डालकर कुछ बोल सकें. . . पर यहां तो गृहस्थ शिष्यों के साथ आप बैठते हैं, हंसी-मजाक करते हैं और वे आपके सामने बैठकर बतियाने लगते हैं, फिजूल की घर-गृहस्थी की बातें करते रहते हैं— और आप हैं कि सुनते रहते हैं. . . इतना समय है क्या आपके पास? ये कैसे शिष्य हैं, कि सामने देखकर बतियाते रहते हैं. . . यह सब क्या है?

— पूछ रहे थे संन्यासी गुरुभाई. . . रवीन्द्र स्वामी।

—"तुम नहीं समझते रवीन्द्र! यह गृहस्थ संसार है, जंगल और हिमालय का प्रांतर नहीं. . . ये गृहस्थ शिष्य हैं, इनकी दृष्टि स्थूल है; ये धन, पुत्र, सुख मांगकर ही प्रसन्न हो जाते हैं।"

"शिष्यत्व क्या है? इसे पहचानने और समझने के लिए बहुत बड़े त्याग की जरूरत है— और जहां तक मेरा प्रश्न है, मैं इन पर एक आवरण डाले रखता हूं, जो इस आवरण को भेदकर मुझ तक पहुंचता है, अपने 'स्व' को मिटाकर लीन होता है, वही बनता है शिष्य". . . समाधान किया गुरुदेव ने।

शिष्य वह होता है, जो धीरे-धीरे अपने अस्तित्व को समाप्त कर दे, 'स्व' को विसर्जित कर दे, अपना नाम, पद, गरिमा, श्रेष्ठता, उच्चता के भावों को तिरोहित कर दे, जो अपने-आप को गुरु से अलग समझे ही नहीं, उसका स्वयं का कुछ नहीं होता— शरीर, मन, प्राण, देह, रोम-प्रतिरोम सब गुरु का होता है, जो 'गुरुमय' होता है।

जो गुरु के सामने विनम्र रहे, नीची नजर कर आज्ञा सुने और प्राण रहने तक गुरु-आज्ञा का पालन करे; आज्ञा पालन में न तो चिन्तन हो, न ही विलम्ब; आज्ञा का पालन करना ही उसका धर्म हो, इष्ट हो।

जो सब विधि गुरु-चरणों में समर्पित हो, वही शिष्य कहलाता है।





आपका अपना निखिलेश्वरानन्द

"स्वामी योगत्रयानन्द जी" देश की महान विभूति हैं, वे साधना की उच्चतम स्थितियों को प्राप्त कर सिद्धाश्रम के सफल साधकों और मार्गदर्शकों में से एक हैं, परन्तु जीवन के यौवनकाल में बद्रीनाथ से आगे व्यास गुफा के पास स्वामी योगत्रयानन्द जी के पास निखिलेश्वरान्द जी लगभग तीन वर्ष रुके थे, उस समय स्वामी जी स्वयं साधना की ऊंचाइयों पर स्थित होते हुए सिद्धाश्रम जाने की तैयारियां कर रहे थे।

एक गुरु भाई के नाते उनसे स्वामी निखिलेश्वरान्द जी से सम्बन्धित संस्मरण साधनात्मक रूप से प्राप्त हुए हैं, जिन्हें प्रस्तुत करते हुए हम प्रसन्नता अनुभव कर रहे हैं—

भले आदमियों पर विपत्तियां बार-बार आती हैं, यह कहावत निखिल पर भी सोलह आने लागू होती है। मेरा काफी कुछ समय बद्रीनाथ से आगे व्यास गुफा के पास व्यतीत हुआ है. . . और जब मैं जीवन के मध्यकाल में साधना की ऊंचाईयों को छूता हुआ ब्रह्माण्ड साधना में रत था, तभी एक दिन एक दुबला-पतला सा साधु कुटिया की ओर आया, चेहरे पर तेजस्विता, हृदय में निर्भीकता और पूरे शरीर में एक अजीब-सी मस्ती, निश्चिंतता का भाव. . . सब कुछ मिलाकर एक ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण कर रहे थे, जिसमें कुछ पाने की आकांक्षा हो, सहन करने

की शक्ति हो।

यह व्यक्तित्व आम साधकों की तरह ही मेरे आश्रम की ओर निकल आया था। उस समय मेरे आश्रम में दस-बारह शिष्य थे, परन्तु इस व्यक्तित्व ने आश्रम में रहने या आश्रम का प्रसाद पाने से मना कर दिया।

वह बोला— "मैंने आपका नाम सुना है, और मुझे आपसे कुछ प्राप्त करने की आकांक्षा है, मैं स्वयं अलग अपनी गुफा बनाऊंगा और रहूंगा।"

मुझे पहली ही बार में ऐसा लगा, मानो यह साधक काफी ऊंचाई पर पहुंचने की क्षमता रखता है।

धीरे-धीरे हम दोनों परस्पर घुल-मिल गये, हममें बड़े और छोटे का भेद ही नहीं रहा, ऐसा लगा जैसे हम जन्मों-जन्मों तक साथ रहे हों. . . और सौभाग्य की बात यह है, कि आगे चलकर हम दोनों एक ही गुरु से दीक्षा प्राप्त कर गुरु भाई बने।

आज तो वह मुझसे साधनात्मक दृष्टि से काफी आगे है, परन्तु मैं उसकी प्रारम्भिक बातचीत, दृढ़ता और धैर्य भुला नहीं सका हूं, उन तीन वर्षों के साथ सैकड़ों-सैकड़ों अनुभव जुड़े हुए हैं और जब भी मैं उन अनुभवों को स्मरण करता हूं, तो गला भर आता है; जी तो चाहता है कि उसे खींच कर हमेशा-हमेशा के लिए अपने पास रख लूं।

उस तरफ बर्फ गिरती रहती है, और बरसात के दो महीने तो ऐसे बीतते हैं, कि चारों तरफ बर्फ का साम्राज्य छा जाता है, यहां तक कि आश्रम का छः फीट ऊंचा दरवाजा भी बर्फ से ढक जाता है। आश्रम में हम पहले से ही तीन-चार महीने के भोजन की व्यवस्था करके रखते हैं. . . परन्तु निखिल ने इस प्रकार की कभी कोई व्यवस्था नहीं की। उस समय वह मेरे आश्रम से लगभग आधा किलोमीटर दूर गणेश गुफा के पास अपनी एक सुन्दर गुफा में ध्यानस्थ था, वह भोजन तो दूर पानी की सुराही तक गुफा में नहीं रखता था, गुफा के बाहर ही नदी बहती है, कभी प्यास लगती, तो वहीं प्यास बुझा लेता, परन्तु शीतकाल में इस नदी का पानी भी ऊपर से जम जाता है।

एक बार जोरों का बर्फीला तूफान आया और सब कुछ बर्फ से ढक गया,

तीन दिन तक मैं और मेरे शिष्य आश्रम से बाहर नहीं निकल सके, मैंने इससे पूर्व निखिल को अपने आश्रम में आने के लिए कह दिया था, परन्तु जिद्द तो उसमें कूट-कूट कर भरी है, जो मन में ठान लेता है, उस को पूरा करता ही है और वह वहीं गुफा में ही टिका रहा।

जब मैं तीन दिन तक बर्फ की वजह से बाहर नहीं निकल सका, तो मुझे चिन्ता हुई और बड़ी मुश्किल से पांचवें दिन उस गुफा तक पहुंचा, जिसमें निखिल रह रहा था। उसके पास तो ऊनी वस्त्र या कम्बल भी नहीं थे, फावड़ों से बर्फ तोड़कर अन्दर पहुंचे, तो निखिल एक प्रकार से बेहोश-सा गुफा की दीवार से पीठ टिकाये बैठा था; उसकी हथेलियों पर और पैरों के तलवों पर मालिश करने से शरीर में गर्मी का संचरण हुआ, तो वह चैतन्य हुआ, परन्तु फिर भी उसने आश्रम में चलने के लिए मना कर दिया और कहा— "पूरी साधना सम्पन्न करके ही आपके पास आऊंगा।"

वह थी उसकी दृढ़ता व संपुष्टता, जिसकी वजह से आज साधनात्मक ऊंचाइयों तक वह पहुंचने में सफल हो सका है।

यौवनकाल में उसमें गजब का आत्मविश्वास और शक्ति थी, साधनात्मक जीवन जीने का वह अभ्यस्त था, पर साथ ही साथ दूसरों के दुःख में भाग लेना और दूसरों की मदद करना उसका स्वाभाविक गुण था।

एक बार गर्मी के दिनों में मैं और निखिल मनाली के आगे के जंगलों में विचरण कर रहे थे। ये जंगल उन दिनों भयानक और जंगली पशुओं से भरे हुए थे, उन जंगलों में जंगली भैंसे अधिकता से पाये जाते थे, तीन साल का जंगली भैंसा इतना खूंखार होता है, कि शेर के सामने आने पर अपने सींगों से उसे भी उछाल देता है, उस समय वह पूर्ण यौवन पर होता है तथा साक्षात् यमराज का स्वरूप दिखाई देने लगता है!

इन भैसों से बचाव का रास्ता पेड़ों पर चढ़ना ही होता है, परन्तु एक बार हम दोनों बातचीत में मग्न पगडंडी पर बढ़े चले जा रहे थे, कि सामने अचानक हमारी दृष्टि गई, तो शरीर में खून जम-सा गया, हम से लगभग पन्द्रह-बीस फीट की दूरी पर सामने ही एक जवान, अड़ियल भैंसा लाल-लाल आंखों से हम लोगों को घूरते हुए खड़ा था, उसके पैने, नुकीले सींग और बलिष्ठ शरीर देखकर हाथी

भी दुम दबाकर एक तरफ खड़ा हो जाता, उस समय हमारे पास तो कोई चारा ही नहीं था, आस-पास कोई ऐसा बड़ा पेड़ भी नहीं था, कि जिस पर चढ़कर प्राण-रक्षा की जा सके, ऐसा लगा मानो मृत्यु स्वयं यमराज-वाहन के रूप में सामने आ खड़ी हुई हो!

तभी वह भैंसा जोरों से डहका और हमारी ओर झपटा, निखिल ने मुझे सेकेण्ड के सौंवे भाग में त्वरित निर्णय लेकर धक्का दिया और पगडण्डी के एक तरफ झटक दिया और खुद भी सरक गया, वेग के साथ भैंसा पगडंडी से होता हुआ आगे निकल गया, वह लगभग पन्द्रह-बीस फीट आगे जाकर पुनः लौटा, तब तक मैं जमीन से उठकर खड़ा हो गया था और निखिल भी कुछ दृढ़ निश्चय लेकर सामने तन गया था; भैंसा झपट कर सामने आ खड़ा हुआ और मुझे अच्छी तरह से स्मरण है, कि तभी निखिल का जोरों का मुक्का उसकी पीठ पर पड़ा, वह मुक्का अपने-आप में एक तीव्रतम प्रहार था, वह अड़ियल, बलिष्ठ भैंसा मुक्के के एक प्रहार को सहन न कर सका और जीभ निकाल कर वहीं पसर गया!

मैं आश्चर्य. . . घोर आश्चर्य के साथ निखिल की ओर देखता ही रह गया! निश्चय ही उस दिन अगर निखिल मेरे साथ नहीं होता, तो मेरी मृत्यु निश्चित थी, परन्तु इससे भी बढ़कर मैं आश्चर्यचकित था, उसके मुक्के के प्रहार पर. . . अब पता नहीं क्या स्थिति है, परन्तु मैंने उसके यौवन के उद्दाम वेग और बलिष्ठ शरीर को देखा है, ऐसा शरीर बिरले लोगों को ही नसीब होता है!

उसके चेहरे पर एक गजब का आत्मविश्वास और धैर्य है, कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी वह विचलित नहीं होता, अपितु सहन-शक्ति को बराबर बनाये रखकर उस विपित्त में से भी रास्ता निकाल लेता है। सैकड़ों बार मैंने आश्रम पर और अन्य स्थानों पर उसकी अडिगता, धैर्य, कष्ट-सहिष्णुता और क्षमता को अनुभव किया है।

एक बार गोमुख जाते समय चीड़वासा के पास मेरा पांव फिसला और मैं लगभग दो-तीन सौ फीट नीचे लुढ़कता चला गया, एक प्रकार से मेरा सारा शरीर पत्थरों से छिल गया था, ऐसे समय में उसने उतनी ऊंचाई से नीचे कूदकर जिस प्रकार से मुझे खड्ड में गिरने से बचाया, वह तो रोमाञ्चकारी है; सही अर्थों में कहूं, तो अब मैं जो भी श्वास ले रहा हूं, वे सभी श्वासें निखिल की दी हुई हैं; यद्यपि आयु में मैं उससे बड़ा हूं, परन्तु फिर भी मैं उसके प्रति कृतज्ञ हूं, ऋणी हूं।

गिरने पर जब मेरा सारा शरीर पत्थरों और जंगली झाड़ियों से छिल गया, तो वह मुझ जैसे बलिष्ठ व्यक्ति को कन्धे पर लाद कर बारह किलोमीटर नीचे गंगोत्री तक ले आया, वहां रहकर उसने जिस प्रकार से मेरी सेवा की, उसको तो शब्दों के माध्यम से लिखा ही नहीं जा सकता। सही अर्थों में वह पर दुःख कातर है। दूसरों को सहयोग देना, उनकी सेवा करना उसका स्वभाव है, उसमें दूसरों के दुःख-दर्द में भाग लेने की और मुसीबतों से छुटकारा दिलाने की स्वतः भावना है।

उसके चेहरे पर विशेष प्रकार की चमक और आकर्षण है, जिसकी वजह से कोई भी उसको एक बार देख लेता है, तो उसकी ओर खिंच जाता है . . .और खिंचता ही नहीं, उसका चेहरा हमेशा-हमेशा के लिये चित्त पर अंकित हो जाता है। चाहे कितना ही उसे भुलाने की कोशिश की जाय, मगर यह चेहरा ही ऐसा है कि भुलाये नहीं भूलता। कई बार इस आकर्षणता से वह खुद झुंझला जाता है। लोगों को कम-से-कम अपने पास रुकने के लिए कहता है, परन्तु फिर भी कुछ ऐसा उसके चेहरे पर है, जिसको शब्दों में नहीं बांधा जा सकता।

शब्दों का उसके पास अक्षय भण्डार है, ऐसा लगता है कि शब्द उसके सामने नृत्य कर रहे हैं। जब वह प्रवचन देता है, तो शब्द स्वतः वाक्य बनकर निकलते रहते हैं। दूसरे लोगों को जहां शब्दों को पकड़ना पड़ता है, वहां निखिल के सामने शब्द स्वयं हाथ जोड़े खड़े रहते हैं, मैंने आगे चलकर उसके कई प्रवचन सुने हैं, ऐसा लगता है कि सरस्वती स्वयं उसके कण्ठ में विराजमान है। किसी भी एक विषय पर वह धारा प्रवाह बोलने लग जाता है और पूरे प्रवचन में एक बार भी गतिरोध नहीं आ पाता।

मुझे 'ब्रह्म' पर दिया हुआ उसका प्रवचन अभी तक ज्यों-का-त्यों याद है। सिद्धाश्रम में उन्होंने गुरु-दिवस पर जो प्रवचन दिया था, वह अपने-आप में ऐतिहासिक और महत्त्वपूर्ण बन कर रह गया है। 'ब्रह्म' की जो नवीन व्याख्या और नवीन चिन्तन उन्होंने उस दिन प्रस्तुत की, उसे सुनकर मैं उसके सामने अपने आपको बौना-सा महसूस करने लगा हूं; सही कहूं, तो मैं दस जन्म लेकर भी उसके समान इतना अर्थवत्ता युक्त प्रवचन नहीं दे सकता।

वह प्रवचन देता ही नहीं है, अपितु प्रवचन के साथ-साथ पूरे जन-समुदाय को बहाये चला जाता है। उपस्थित समुदाय प्रवचन के साथ-साथ उसकी इच्छानुसार हंसते हैं, गंभीर होते हैं, मुस्कराते हैं, रोते हैं और तन्मय हो जाते हैं। एक प्रकार

से श्रोताओं को ऐसा अनुभव होता है, मानो एक तीव्रगामी बहाव में बहे चले जा रहे हों, जहां रुकने का या विश्राम करने का कोई ठौर नहीं है. . . और उस तेज बहाव में कोई रुकना भी नहीं चाहता।

जब सिद्धाश्रम की बात चली है, तो सिद्धाश्रम के लगभग सभी साधक निखिल के प्रति कृतज्ञ हैं। एक रुखे-सूखे सिद्धाश्रम को जिस प्रकार से उसने ठहाकों और कहकहों से भर दिया है, वह अपने-आप में आश्चर्यजनक है। अभी तक तो केवल साधक वहां ध्यानस्थ रहते और साधना करते थे, परन्तु निखिल ने अपने प्रबल व्यक्तित्व के बल पर उसमें आमूल-चूल परिवर्तन कर दिया। सिद्धाश्रम में प्रवेश के लिए, साधकों पर किसी प्रकार का कोई बन्धन नहीं रहने दिया। साधक चाहे तो कुटिया में बैठकर ध्यान करे. . . और चाहे तो प्रकृति में विचरण करते हुए उससे एकाकार हो. . . और चाहे तो खरगोश के छोटे-छोटे बच्चों के साथ किलोल करता रहे; उसकी दृष्टि में ये सब साधनाएं हैं, यद्यपि इसका बहुत अधिक विरोध हुआ, काफी वाद-विवाद, तर्क-वितर्क हुए, यह आशंका प्रकट की गई, कि इससे अव्यवस्था और उच्छृंखलता फैल जायेगी, पर इसके प्रत्युत्तर में निखिल का एक ही वाक्य होता— "जिसने सिद्धाश्रम में प्रवेश करने की योग्यता पा ली है, वह उच्छृंखल और अविवेकी हो ही नहीं सकता।"

— और आज सिद्धाश्रम सही अर्थों में स्वर्ग से भी ज्यादा सुखदायक तथा नन्दन-कानन से भी ज्यादा मधुर बन गया है। सिद्धाश्रम में कुछ साधक तपस्यारत हैं, तो दूसरी ओर कुछ गन्धर्व संगीत-ध्वनि कर रहे हैं. . . और साधक तन्मय होकर सुन रहे हैं, सिद्धयोगा झील के किनारे साधक और साधिकाओं का विविध वेश-भूषाओं में जमघट, एक नवीन सृष्टि की रचना करता है, छोटे-छोटे हिरण और मृग-शावकों ने वातावरण को आनन्दमय बना दिया है, विशेष और महत्त्वपूर्ण अवसरों पर देव-अप्सराओं के द्वारा शुद्ध नृत्य और गायन को प्रचलित कर उसने समस्त विद्याओं का एक प्रकार से पुनर्जीविकरण कर दिया है। आज सही अर्थों में सिद्धाश्रम, "सिद्धाश्रम" है, और वहां जाने के बाद किसी को लौटने की इच्छा नहीं होती।

मैं निखिल से दो वर्ष पहले सिद्धाश्रम गया हूं, मैंने उन दो वर्षों में उड़ती हुई रेत और ठूंठ की तरह बैठे हुए योगियों को ही पूरे सिद्धाश्रम में देखा था, मरघट की सी शांति चारों ओर व्याप्त थी, पर आज पूरे सिद्धाश्रम में हंसी-खुशी,

खिलखिलाहटें, मुस्कराहटें, कहकहे, उछल-कूद, नृत्य-संगीत और साधनाएं— सब कुछ ने मिलकर एक नवीन प्रकार के सिद्धाश्रम को स्थापित कर दिया है। आज तो वास्तव में देवता लोग भी इस सिद्धाश्रम में आने और कुछ क्षणों तक रुकने के लिए लालायित होते होंगे, इसीलिये तो सिद्धाश्रम के सभी साधक-साधिकाएं निखिल को सम्मान देते हैं, प्यार करते हैं और कृतज्ञ बने रहकर उसका पूजा, अर्चन, सम्मान करते हैं।

प्रभु ने उसे बलिष्ठ और सुन्दर शरीर दिया है। मैंने उसके साधनारत स्वरूप को देखा है, सर्वथा उसको एकांत में महीनों ध्यानस्थ पाया है। ईश्वर ने बहुत ही आकर्षक और सुन्दर शरीर उसको दिया है. . . और मैं उसको देखता ही रह जाता हूं।

जिन्होंने भी उसके खुले हुए वक्षस्थल को देखा है, वे वास्तव में ही सौभाग्यशाली हैं। साधकों के लिये तो यह वक्षस्थल ईर्ष्या का आधार है ही, सौन्दर्य की दृष्टि से भी यह वक्षस्थल अपने-आप में गजब ढाने वाला है।

एक बार नृत्य के बीच में एक देवांगना ने रुक कर निखिल के खुले हुए वक्षस्थल को देख कर कहा था— "मैं तो इस वक्षस्थल पर अभिभूत हूं, इस पर मर-मिटी हूं". . . और दूसरे ही क्षण वह शर्म से लाल होकर मंच से नीचे उतर गई थी।

वास्तव में ही देव-शास्त्रियों की दृष्टि से वह एक सर्वांगपूर्ण व्यक्तित्व है। ईश्वर उसे शत-शत आयु प्रदान करे।





निखिलेश्वरानन्द

एक अन्तरंग झांकी

पिछले दिनों उच्चकोटि के "हिमालय साधक परिषद्" की तरफ से सम्पादित, प्रकाशित पत्रिका "साधक" में स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी पर एक लेख प्रकाशित हुआ है, जो लगभग बीस पृष्ठों का है, संस्कृत में प्रकाशित यह पत्रिका हिमालय के उच्च योगियों में सर्वाधिक प्रामाणिक, लोकप्रिय तथा महत्त्वपूर्ण है, जिसमें उन योगियों और संन्यासियों के अनुभव, साधना विधियां आदि प्रकाशित होती हैं, जो कि इस क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं।

इस लेख में सिद्धाश्रम के परम योगी भृगु महाराज ने निखिलेश्वरानन्द जी के कुछ अंतरंग संस्मरण संस्कृत में प्रकाशित करवाये हैं और उनके संन्यास जीवन की प्रखरता, सहिष्णुता तथा परिश्रम पूर्वक साधनात्मक उपलब्धियों का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है। योगी भृगु महाराज के अनुसार— "निखिलेश्वरानन्द एक बहुचर्चित नाम है संन्यासियों के मध्य। इनकी निकटता प्राप्त करना अत्यधिक दुर्धर्ष कार्य है; लेकिन जिसे इनकी निकटता मिल गयी, फिर वह सोते-जागते, उठते-बैठते प्रत्येक क्रियाकलाप को करते हुए उनकी ही याद में खोया रहता है।"

साधक पत्रिका में प्रकाशित पूज्य श्री निखिल जी के संस्मरणों से ही कुछ संस्मरण मैं आगे की पंक्तियों में प्रस्तुत कर रहा हूं—

सिद्धाश्रम के प्रखर और तेजस्वी साधकों में स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी हैं, जिन्होंने अपने व्यक्तित्व के बल पर सिद्धाश्रम को एक नया आयाम देने का साहस किया है, उन्होंने अपने जीवन में घोर कष्ट सहन कर साधनात्मक दृष्टि से जो उपलब्धियां प्राप्त की हैं— वे अपने-आप में साधकों, संन्यासियों में दीपस्तम्भ की तरह कार्य करती रहेंगी।

मैंने इन्हें साधना में सफल और असफल दोनों ही क्षणों में सजीव मुस्कराहट के साथ देखा है, जुंझारू प्रवृत्ति उनमें सर्वाधिक है. . . और वे किसी भी प्रकार की विपरीत परिस्थितियों में अपने-आपको संयमित कर आगे बढ़ जाते हैं, रुकना या निष्क्रिय हो जाना उनके जीवन में मैंने नहीं देखा है।

प्रारम्भिक दिनों में जब वे सिद्धाश्रम आये ही थे, उसके सप्ताह भर बाद की ही बात है, वे मेरे पास आये और उन्होंने लोकोत्तर साधना सीखने की इच्छा व्यक्त की, मैंने उस दुबले-पतले संन्यासी युवक को देखा और कहा. . .

— "सिद्धाश्रम में प्रवेश पा लिया है, यह अच्छी बात है, परन्तु अभी तुम में वह क्षमता नहीं आ पाई है, जो इस प्रकार की साधना के लिए आवश्यक होती है।"

उन्होंने एक क्षण के लिए नजरें ऊंची उठाकर मेरी ओर देखा, मैंने अनुभव किया, कि इन आंखों में दृढ़ संकल्प-शक्ति और अग्नि भरी हुई है, परन्तु उन्होंने दूसरे ही क्षण अपने-आप को संयत कर लिया और बोले. . .

— "मैं जहां खड़ा हूं, वहीं खड़ा हूं, जब आप मेरी दृढ़ता को आंक लें, तब मुझे सिखा दें।"

— और वे उसी स्थान पर चार दिन, चार रात्रि अडिग खड़े रहे, मैं भी जानबूझ कर कुछ बोला नहीं, परन्तु इन चार दिनों तक अकम्पित, अडिग खड़े रहकर उन्होंने अपनी दृढ़ता का प्रमाण दे दिया था. . .

— और मुझे उसी दिन विश्वास हो गया था, कि यह तेजस्वी युवक सिद्धाश्रम में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत कर सकेगा।

सिद्धाश्रम में रहकर कुछ ही दिनों में सभी संन्यासी साधक-साधिकाओं में वे लोकप्रिय हो गये, लोकप्रियता के पीछे उनका अन्तरंग सामीप्य स्वभाव रहा है। उनका एक साधारण उद्धरण वाक्य है—

● "दो ही स्थितियां इस जीवन में सम्भव हैं— या तो किसी को पूरी तरह से अपना बना लें, या हम पूरी तरह से किसी के बन जायें।"

इस थोड़ी-सी अवधि में उन्होंने उन संन्यासी साधक-साधिकाओं को उच्चकोटि की साधनाएं सम्पन्न करवा कर एक नया कीर्तिमान स्थापित किया. . . और मैं आज भी देखता हूं, कि उनके बिना वे सभी साधक सिद्धाश्रम में सब कुछ होते हुए भी अपने-आप को खाली-खाली सा अनुभव करते हैं, उनका नाम लेने पर, प्रवचन के दौरान उनकी चर्चा आने पर उन लोगों की आंखें बरसने लग जाती हैं।

भांपने की और पचा लेने की शक्ति उनमें जरूरत से ज्यादा है, वे देखते ही जान जाते हैं, कि यह साधक किस स्तर का है. . . और कहां तक पहुंच पायेगा, फिर उससे वे उतनी ही निकटता या दूरी बनाये रखते हैं। ऊपर से निखिल जी का चेहरा देखने पर कुछ भी पता नहीं चलता कि उनके मन में क्या है? पर उनके मन में स्पष्ट होता है— और जिसको सहायता देनी होती है या जिसको जिस स्तर पर पहुंचना होता है, वे उसे वहां तक पहुंचा कर ही विश्राम लेते हैं।

विपरीत परिस्थितियां और विरोधी वातावरण न तो उनको डिगा पाता है और न ही उनकी संकल्प-शक्ति में किसी प्रकार की कोई न्यूनता ला पाता है। इतना स्पष्ट है, कि उनका प्रिय बनना और प्रिय बने रहना अत्यधिक कठिन है— और इसका कारण यह है, कि अपने में पूर्णता के साथ एकाकार करने से पहले वे कई प्रकार की परीक्षाएं लेते रहते हैं, पर जो साधक इन सभी परीक्षाओं में उनके प्रति समर्पित भाव स्पष्ट करता है, उसको वे कुन्दन बना देते हैं. . . और यह सामर्थ्य केवल उनमें ही है।

सिद्धाश्रम की यह परम्परा रही है, कि समय-समय पर कुछ विशिष्ट

योगियों को लौकिक संसार में भेजते रहें, जिससे कि दर्शन, अध्यात्म, योग, आयुर्वेद और साधनात्मक चिन्तन इस पृथ्वी पर से लुप्त न हो जाय। एक महीने भर के मानस-मन्थन के बाद योगीराज स्वामी सच्चिदानन्द जी ने निखिलेश्वरानन्द जी को अपने पास बुलाया और कहा. . .

— "तुम्हें गृहस्थ जीवन में जाकर यज्ञ, मंत्र, योग और आयुर्वेद की परम्परा को पुनर्जीवित करते हुए उसे समृद्ध बनाना है।"

मैं उस समय वहां उपस्थित था, और मैं जानता था, कि ये शब्द कहते हुए स्वामी सच्चिदानन्द जी की जिह्वा भी थरथरा रही थी, पर इस कठिन तथा दुष्कर आज्ञा को निखिल जी ने धैर्यपूर्वक सुना; मुझे उनकी पंक्तियां आज भी ज्यों की त्यों स्मरण हैं. . .

— "मैं लौकिक जीवन में गृहस्थ रूप में रहकर आपकी आज्ञा को पूर्णता देने का प्रयास करूंगा, परन्तु मैंने उस समाज को देखा है, भोगा है, अब वह समाज नहीं रहा जो पहले कभी था। पहले तो एक ही पादपद्म पैदा हुआ था, जिसने शंकराचार्य को जहर देकर मार दिया था, परन्तु मेरे पास तो सैकड़ों पादपद्म शिष्य उपस्थित रहेंगे. . . मैं जा अवश्य रहा हूं, पर समाज का और शिष्यों का जितना जहर मुझे पीना पड़ेगा, वह मैं ही जानता हूं।"

— और उनकी आंखें ही नहीं गुरुदेव की आंखों से भी अश्रु-कण छलकते हुए मैंने पहली बार देखे थे।

मैंने उन्हें कई-कई रूपों में देखा है, कठिन साधनाओं में सफलता प्राप्त करते हुए; विचलित साधकों को धैर्य बंधाकर साधनात्मक पूर्णता देते हुए, सिद्धाश्रम के कठोर और जड़ नियमों के प्रति खड़े होकर परिवर्तन लाते हुए; अपने शिष्यों के प्रति जूंझ कर, लड़कर उन्हें अधिकार दिलाते हुए; उनके दु:ख में भाव विह्वल होते हुए; क्रोध में अग्नि-पुञ्ज बनते हुए; शिष्यों की परीक्षा लेते समय असहाय और असमर्थता व्यक्त करते हुए; विपरीत परिस्थितियों के सामने सीना तानकर खड़े होते हुए; अविचलित गति से आगे बढ़ते हुए और अपने प्रवचनों से लाखों-लाखों लोगों को मंत्र-मुग्ध करते हुए मैंने देखा है।

जब मैं उन्हें गृहस्थ जीवन में देखता हूं, तो अपने-आप में

आश्चर्यचकित रह जाता हूं, मेरा मन, मस्तिष्क और बुद्धि यह विश्वास नहीं कर पाती है, कि हिमालय का उच्चकोटि का योगी निखिलेश्वरानन्द और एक गृहस्थ रूप में कार्यरत डॉ० श्रीमाली, ये दोनों व्यक्तित्व एक ही हैं। एक सामान्य नर की तरह जीवन यापन करने वाला, समस्याओं से जूझने वाला; तथा दूसरा हर क्षण सक्रिय और दैदीप्यता युक्त व्यक्तित्व, एक ही है!

— यह समायोजन करना बड़ा कठिन हो रहा है, परन्तु जो मैंने देखा है और जो देख रहा हूं, दोनों ही सत्य हैं; क्योंकि उच्चकोटि का व्यक्तित्व ही इतना विनम्र और विनीत हो सकता है।

— "ऐसा व्यक्तित्व साधकों के लिये आदर्श है, तो सिद्धाश्रम के लिए गौरवमय भी।"

मुझे विश्वास है, कि अपने गुरु-कर्त्तव्य को पूर्णता देने के बाद वे सिद्धाश्रम में आकर अपने कहकहों से तथा साधनात्मक तेजस्विता से इस सिद्धाश्रम को पुनः प्राणवान, चैतन्य और सुगंधित रूप में महका सकेंगे तथा सिद्धाश्रम का संचालन अपने हाथों में लेकर इसे अधिक दिव्य, तेजस्वितायुक्त और पूर्णता प्रदान कर सकेंगे।





कुछ मोती कुछ शंख

सेवा ही साधना है

भारद्वाज का आश्रम उन दिनों सर्वश्रेष्ठ आश्रम माना जाता था, और प्रत्येक महर्षि भारद्वाज का शिष्य बनने के लिए लालायित रहता था। बड़ी कठिनाई तथा कठोर परीक्षा के बाद ही महर्षि भारद्वाज के आश्रम में प्रवेश मिलता था।

पण्डित मणिभद्र तथा योगी लोमस दोनों ही भारद्वाज के प्रिय शिष्य थे, और दोनों ही जल्दी-से-जल्दी पूर्णता प्राप्त करने को प्रयत्नशील भी। महर्षि भारद्वाज का भी दोनों पर समान रूप से स्नेह था। पण्डित मणिभद्र निरन्तर स्वाध्याय में ही डूबे रहते, गुरु के प्रत्येक शब्द और चिन्तन को अपने हृदय में उतारते और गुरु जो भी साधना सिखाते उसे जल्दी-से-जल्दी सम्पन्न करने का प्रयत्न करते।

दूसरी तरफ लोमस शांत और सेवाभावी शिष्य थे, उन्हें गुरु की सेवा करने में विशेष आनन्द आता था। गुरु किस कार्य से सन्तुष्ट होते हैं, किस प्रकार की सेवा से उन्हें प्रसन्नता मिलती है, इसका चिन्तन वे बराबर हृदय में बनाये रखते, यद्यपि गुरुदेव भारद्वाज जो भी साधना सिखाते, उस साधना को पूरा करने का लोमस प्रयत्न करते, परन्तु साधना सम्पन्न करने में उनकी गहरी रुचि नहीं रहती। इसके

विपरीत प्रातःकाल गुरु के लिए जल भर कर रखना, स्नान की व्यवस्था करना, उनके कपड़े धोना, शाम को थक जाने पर उनके शरीर की मालिश करना, पैर दबाना आदि कार्य ही उन्हें प्रिय थे. . . और वे इसी कार्य में लगे रहते।

धीरे-धीरे समय बीतता गया, पण्डित मणिभद्र ने लगभग दस-बारह साधनाएं सम्पन्न कर लीं, जबकि लोमस ने अभी तक एक भी साधना पूरी नहीं की, इससे मणिभद्र को घमण्ड-सा हो गया था, परन्तु शिष्टतावश उन्होंने कहा कुछ नहीं। इतना होने पर भी उनके मन में यह भावना अवश्य आ गई थी, कि गुरु के घर को छोड़ते समय मैं लोमस से काफी आगे बढ़ा हुआ होऊंगा।

भारद्वाज दोनों के मन की बात समझ रहे थे, पर वे बोलते नहीं थे, उनका स्नेह दोनों पर उसी प्रकार से था। धीरे-धीरे शिक्षणकाल समाप्त हुआ. . . और गुरु ने एक तिथि निश्चित कर दी, जिस दिन दोनों को संसार-क्षेत्र में उतरना था। पण्डित मणिभद्र तब तक कई कठिन साधनाएं पूरी कर चुके थे, फिर भी आकाश गमन प्रक्रिया, परकाया प्रवेश, सहस्र रूपों में व्यवस्थित होना आदि साधनाएं बाकी थीं।

इसकी अपेक्षा लोमस पहली ही साधना में लगे हुए थे. . . और वह साधना भी अभी तक पूरी नहीं हुई थी।

विदाई का दिन आ पहुंचा, जिस दिन सभी शिष्य गुरु पूर्णिमा होने के नाते गुरु को यथाशक्ति भेंट करते और उसके बाद गुरुगृह से विदाई समारोह था। सभी लोग और शिष्य-समुदाय पण्डित मणिभद्र की प्रशंसा करते. . . और वे सोच रहे थे, कि पण्डित मणिभद्र उच्चकोटि के साधक बन चुके हैं।

प्रातःकाल भारद्वाज ने घोषणा की— "मैं एक वर्ष के लिए अज्ञात स्थान की ओर जा रहा हूं, सायंकाल मेरे पीछे जो आश्रम संचालित करेगा, उसके नाम की घोषणा करूंगा". . . और भारद्वाज अपने स्वाध्याय कक्ष में चले गये।

उपस्थित शिष्यों के विशाल समुदाय में निश्चय हो गया, कि गुरुदेव के जाने के बाद पण्डित मणिभद्र ही आश्रम का संचालन करेंगे, वे योग्य, विद्वान, नम्र और संगठनकर्ता भी हैं— लगभग सभी ने यही धारणा और निश्चय कर लिया था।

सायंकाल गुरुदेव व्यास पीठ पर बैठे, तो समस्त शिष्य सामने बैठ गये। गुरुदेव के सामने ही पण्डित मणिभद्र बैठे हुए थे, थोड़ा पीछे हटकर एक तरफ लोमस भी बैठे थे और सामने विशाल शिष्य समुदाय बैठा हुआ था।

महर्षि भारद्वाज ने एक नजर समस्त शिष्य समुदाय पर डाली. . . और लोमस को अपने सामने बुलाया, फिर उसे गुरु की आंखों की तरफ अपलक ताकने को कहा और मात्र तीन सेकेण्ड के शक्तिपात तथा "अहोदी" साधना के द्वारा समस्त साधनाओं की पूर्णता लोमस को दे दी!

उस एक ही क्षण में लोमस उन सारी सिद्धियों और साधनाओं में पारंगत हो गये, जो भारद्वाज के पास थीं। भारद्वाज ने घोषणा की— "मेरे जाने के बाद एक वर्ष तक लोमस ही इस आश्रम का संचालन करेंगे। साधनाएं दो तरीकों से प्राप्त की जा सकती हैं— अभ्यास के द्वारा या सेवा के द्वारा। लोमस ने दूसरे पथ का अनुसरण किया है और यह रास्ता ज्यादा महत्त्वपूर्ण है, मेरे पास जितनी भी साधनाएं व सिद्धियां हैं, उन सभी साधनाओं और सिद्धियों में अब लोमस पारंगत हो चुके हैं, पण्डित मणिभद्र भी अभी एक वर्ष तक इस आश्रम में रहेंगे. . . और उनकी जो साधनाएं शेष हैं, वे लोमस से प्राप्त कर लेंगे।"

— और यह कह कर महर्षि भारद्वाज उठ खड़े हुए तथा अज्ञात स्थान की ओर बढ़ गये।

गुरु बिना गति नास्ति

उन दिनों उड़िया बाबा का नाम पूरे भारतवर्ष में विख्यात था, सिद्धाश्रम से उनका निकट सम्बन्ध रहा है. . . और वे सशरीर सिद्धाश्रम में आते-जाते रहे हैं, योगीराज विशुद्धानन्द जी, योगी सूर्यदेव, मां आनन्दमयी आदि पर उनका विशेष स्नेह था।

उड़िया बाबा अपने शरीर को कई रूपों में परिवर्तित कर सकते थे, जैसे रासलीला के समय भगवान् श्रीकृष्ण ने विशिष्ट साधना के द्वारा अपने एक शरीर को सैकड़ों शरीरों में रूपान्तरित कर 'प्रत्येक गोपी के साथ एक कृष्ण' जैसी स्थिति पैदा कर दी थी, उसी प्रकार उड़िया बाबा भी एक क्षण विशेष में वाराणसी में होते और उसी क्षण कलकत्ते में वे अपने शिष्य के यहां भी उपस्थित होते। इस प्रकार वे दस-पन्द्रह, बीस रूपों में रूपान्तरित हो सकते थे, कई लोग इसके साक्षीभूत भी रहे हैं!

एक बार योगी सूर्यदेव ने प्रश्न किया— "बाबा! आपके पास अद्भुत साधनाएं हैं, इतनी अधिक साधनाएं आपने अपने गुरु से कैसे प्राप्त कर लीं?"

उड़िया बाबा ने जवाब दिया– "आज मैं तुम्हें एक रहस्य की बात बता रहा हूं– मैंने कभी भी आसन पर बैठ कर कोई भी साधना सिद्ध नहीं की, मैं निरन्तर गुरु-सेवा में ही लीन रहता. . . और गुरु-सेवा करने में मुझे अन्य किसी कार्य या साधना सम्पन्न करने से ज्यादा आनन्द आता।"

"मुझे सबसे अधिक आनन्द गुरु के पैर दबाने में आता. . . और मैं नियमित रूप से अपने गुरु के पांवों को दबाता, तेल की मालिश करता और सेवा करता। मुझ में यही भावना रहती, कि ये दो पैर ही नहीं हैं, अपितु भगवान् के मन्दिर के दो स्तम्भ हैं, जिन पर ईश्वर का मन्दिर टिका हुआ है।"

"जब कभी गुरुदेव मुझ से अप्रसन्न होते, तो पैर दबवाने के लिए मना कर देते. . . और वह क्षण मेरे लिए सबसे अधिक कष्टदायक और दुःखमय होता, नहीं चाहते हुए भी मेरे हृदय से चीत्कार फूट पड़ती और मैं दूर कहीं कोने में जाकर रोता. . . इतना होने पर भी मेरे मन को शान्ति नहीं मिलती।"

"जब मेरे गुरु पुनः हमेशा के लिए सिद्धाश्रम जाने की तैयारी कर चुके, तो उन्होंने मुझे बुलाकर पूरे शरीर की मालिश करने को कहा, ज्योंही मैंने उनकी कमर और पीठ पर हाथ फेरना शुरू किया, त्योंही मुझे तीव्र विद्युत का झटका-सा लगा और यही विद्युत-आघात मेरे पूरे शरीर और रक्त के कण-कण में व्याप्त हो गया, उसके दूसरे ही क्षण मैंने ऐसा अनुभव किया, कि जैसे गुरु ने मेरे समान लोहे के टुकड़े को अपने स्पर्श से पारस बना दिया हो, सारी सिद्धियां स्वतः ही मेरे अन्दर समाहित हो गईं. . . और ये "अणिमादि" सारी सिद्धियां उसी का परिणाम हैं।"

सिद्धाश्रम जाना सुलभ है

मां आनन्दमयी देश की उच्चकोटि की साधिका रही हैं, उन्होंने अपने जीवन में साधना की उच्चतर स्थिति प्राप्त की थी. . . और वे सशरीर कई बार सिद्धाश्रम जा चुकी थीं। योगीराज विशुद्धानन्द जी को भाई के नाम से पुकारती थीं, अन्य उच्चकोटि के साधकों से भी उनका निकट का सम्पर्क था।

मां शारदा उनकी श्रेष्ठ शिष्या के रूप में प्रसिद्ध हैं, एक दिन जब मां आनन्दमयी देहरादून के आश्रम में बैठी हुई थीं, तो शारदा ने प्रश्न किया– "मां!

आप तो सिद्धाश्रम जा चुकी हैं, क्या हम अपने जीवन में सिद्धाश्रम कभी नहीं जा सकेंगे? क्या हमारा जीवन इतना पापमय है, कि उस दिव्य क्षेत्र के रजकणों को अपने ललाट पर नहीं लगा सकेंगे? सुना है, वहां जाने के लिए तो कई महाविद्याएं सिद्ध करनी पड़ती हैं. . . और उसके बाद भी कठिनाई से ही उसमें प्रवेश मिल सकता है।"

मां दो मिनट तक मौन रहीं, फिर बोलीं— "शारदा! जब शरीर तपस्या और तेजस्विता के बल से हल्का हो जाता है, और वह चतुर्वर्गात्मक न रह कर त्रिवर्गात्मक बन जाता है, तथा भूमि तत्त्व का शरीर से लोप हो जाता है, तब साधक सिद्धाश्रम में जा सकता है। महाविद्याएं सिद्ध करने से तथा सहस्रार जाग्रत करने से व्यक्ति त्रिवर्गात्मक बन जाता है और उसके शरीर से भूमि तत्त्व का लोप हो जाता है।"

— "परन्तु एक गोपनीय तथ्य यह भी है, जिसे गोपनीय ही बना रहना चाहिए, कि यदि गुरु सक्षम और उच्चकोटि का साधक है तथा उसका सहस्रार जाग्रत हो चुका है, महाविद्याएं सिद्ध हो गई हैं, तो उसके हाथ की उंगलियों से और चरणों से निरन्तर एक विशेष ऊर्जा प्रवाहित होती रहती है, यह ऊर्जा दिखाई भले ही न दे और अनुभव भी न हो, परन्तु यह विशिष्ट ऊर्जा निरन्तर प्रवहमान बनी रहती है।"

— "इस प्रकार के साधक अपने पांवों को सामान्यतः छूने नहीं देते, क्योंकि इससे उस ऊर्जा का स्थानान्तरण उस व्यक्ति के शरीर में हो जाता है, जो उनके चरणों को स्पर्श करता है। धीरे-धीरे यदि कोई शिष्य उनके चरणों को स्पर्श करता रहे, निरन्तर चरण-सेवा करता रहे, तो स्वतः ही उसके शरीर में यह विशेष ऊर्जा गुरु के चरणों से प्रवाहित होकर उस शिष्य के शरीर में समाहित होती रहती है. . . और उसका शरीर स्वतः ही त्रिवर्गात्मक बन जाता है, जिससे सभी प्रकार की साधनाएं स्वतः ही सिद्ध हो जाती हैं!"

शारदा के लिए सर्वथा अज्ञात रहस्य था, जो धीरे-धीरे खुलता जा रहा था, उसने पहली बार जाना, कि उच्चकोटि के साधक क्यों अपने चरणों को छूने नहीं देते? स्वतः सहस्रार जाग्रत होने के पीछे क्या रहस्य रहता है? शारदा ने लपक कर मां आनन्दमयी के चरणों को अपनी बांहों में लपेट लिया और अपना सिर उनके चरणों पर टिका कर अश्रु-कणों से चरण धो दिये।

गुरु आज्ञा पालन में देरी कैसी?

परमहंस योगानन्द जी द्वारा लिखित "योगी कथामृत" एक श्रेष्ठ पुस्तक है, जिसमें महावतार बाबा का वर्णन है, जो लाहिड़ी महाशय के गुरु हैं; वे आज भी सशरीर हिमालय में विद्यमान हैं और उन्हें आसानी से देखा जा सकता है। पिछले दिनों कई साधकों और साधुओं को महावतार बाबा के दर्शन हुए हैं। इनका निवास स्थान बद्री-नारायण के निकट एक अज्ञात पर्वत शिखर पर है, यह स्थान सिद्धाश्रम के निकट है, और यहां पर कई उच्च योगियों के दर्शन अनायास ही हो जाते हैं।

वर्तमान में जो बद्री-नारायण का मन्दिर है, वहां से दो किलोमीटर दूर आदि बद्रीनाथ का मन्दिर है, यहां से चढ़ाई प्रारम्भ होती है, घुमावदार तथा कठिन चढ़ाई के बाद सिद्ध पर्वत की चोटी पर पहुंचा जा सकता है।

जो साधक जिज्ञासु हैं या जिनमें दम-खम होता है, वे इस स्थान की अवश्य यात्रा करते हैं, यह स्थान अधिकतर बर्फ से आच्छन्न रहता है।

पिछले दिनों नरहरि बाबा उधर अचानक चले गये थे। नरहरि बाबा पिछले चार वर्षों से मौन रखे हुए हैं। पूज्य श्रीमाली जी के निर्देशन में उन्होंने कई साधनाएं सम्पन्न की हैं। श्रीमाली जी के निर्देश से वे अधिकतर हिमालय पर विचरण करते हैं। उन्हें परामर्श दिया गया है, वे अपने साथ कैमरा और सम्बन्धित सामग्री रखें तथा जो भी अलौकिक, दिव्य घटनाएं, महापुरुष या स्थल दिखाई दें, उनका फोटो ले लें।

अप्रैल में नरहरि बाबा घूमते-घूमते सिद्ध शिखर पर पहुंच गये थे, अनायास ही उन्होंने देखा कि एक तेजस्वी युवक स्फटिक-शिला पर बैठा हुआ है, पूरे शरीर पर एक लंगोटी के अलावा कुछ भी नहीं है, चेहरा दिव्य तेज से आलोकित है, पूरा शरीर गौर-वर्ण, तेजस्वी और प्रभावपूर्ण है, शरीर पर कोई वस्त्र नहीं, लम्बी-लम्बी जटाएं. . . उनके साथ ही दो-तीन शिष्य बैठे हुए थे, जिनमें एक अमेरिकन लग रहा था।

नरहरि बाबा उन्हें देखकर एक विशेष आनन्द में भर उठे, एक क्षण के लिए अपनी आंखें बन्द कीं, तो साधना से ज्ञात हुआ, कि यह लाहिड़ी महाशय के गुरु तथा स्वामी योगानन्द द्वारा वर्णित महावतार बाबा हैं, जिनके दर्शन करने के लिए पूरा विश्व लालायित है।

नरहरि बाबा ने कहा— -"योगीराज! मैं आपके चरणों में बैठकर कुछ सीखना चाहता हूं, आपका सान्निध्य प्राप्त करना चाहता हूं।"

वे मुस्कराये और बोले— "यदि मेरा सान्निध्य चाहता है, तो परीक्षा दे।"

नरहरि बाबा बोले— "मैं उपस्थित हूं, आप जो भी आज्ञा देंगे, वह शिरोधार्य होगी।"

महावतार बाबा बोले— "तुम इस पर्वत की चोटी से बिना हिचकिचाहट के कूद जाओ।"

नीचे अतल गहराई थी. . . और वहां से कूदने पर किसी भी प्रकार से बचना या जीवित रहना सर्वथा असम्भव था, पर नरहरि बाबा गुरु का स्मरण कर बिना हिचकिचाहट के नीचे कूद गये।

कुछ समय बाद महावतार बाबा ने शिष्यों से उनको लाने के लिए कहा। शिष्य उनके क्षत-विक्षत शरीर को उठा लाये, महावतार बाबा ने उनके सिर पर हाथ रखा, तत्क्षण नरहरि बाबा ने आंखें खोल दीं; शरीर जगह-जगह से कट गया था, महावतार बाबा ने उनके शरीर पर हाथ फेरा, तो पूरा शरीर स्वस्थ और तेजस्वी हो गया।

महावतार बाबा ने प्रसन्नतापूर्वक कहा— "तुम जिसके भी शिष्य हो, सही रूप में शिष्य हो, तुम्हें नये तरीके से शिष्यत्व स्वीकार करने की आवश्यकता नहीं है, जब भी मुझे स्मरण करोगे, मैं तुम्हारे पास आऊंगा, और तुम्हें मेरा सान्निध्य हमेशा प्राप्त रहेगा, आज से तुम्हें मृत्यु स्पर्श नहीं करेगी।"

दूसरे ही क्षण महावतार बाबा अपने शिष्यों के साथ अदृश्य हो गये।

तात्त्विक दृष्टि से कोई अन्तर नहीं है

मुक्तानन्द गणेशपुरी आश्रम में एक शिला-खण्ड पर बैठे हुए थे, वे उस दिन कोई विशेष भावभूमि में थे, हम चार-पांच लोग उनके सामने बैठे हुए थे, गुजरात की साधिका बहिन भी सामने बैठी हुई थी, बातचीत के प्रसंग में उस बहिन ने प्रश्न किया—

— "स्वामी जी! मैं साधना कैसे कर सकती हूं, मैं तो स्त्री हूं, यद्यपि मैंने ग्यारह लाख गायत्री मंत्र-जप किया है और अन्य मंत्र-जप भी किये हैं, पर मेरी

सीमाएं हैं, मैं उच्चकोटि की साधनाएं नारी होते हुए भी कैसे सम्पन्न कर सकती हूं?"

मुक्तानन्द कुछ समय रुके, फिर सरोष बोले— "तू तो मूर्ख है, अपने आपको साधिका भी कहती है, और स्त्री भी। अरे! जब तुम साधिका ही बन गई तो फिर स्त्री या नारी कहां रह गई। साधिका तो पूर्णरूप से साधिका होती है, जब तक तुम में यह स्त्रीत्व रहेगा, जब तक तुम्हारे मन में यह भावना रहेगी, कि मैं गुरु-चरणों को कैसे पा सकती हूं, उनकी सामीप्यता कैसे प्राप्त कर सकती हूं, क्योंकि मैं तो स्त्री हूं, तब तक तुम दस हजार वर्ष तक साधना करके भी कुछ प्राप्त नहीं कर सकती।"

— "सबसे पहले तुम्हें भूल जाना चाहिए, कि तुम पुरुष या स्त्री हो, केवल साधिका रूप ही तुम्हें स्मरण रखना है, तभी तुम गुरु के अन्दर अपने-आप को समाहित कर सकती हो. . . और तभी गुरु तुममें समाहित हो सकते हैं, ऐसा होने पर ही साधना में सफलता प्राप्त कर सकती हो।"

— "वस्तुतः तात्त्विक दृष्टि से स्त्री या पुरुष अपने आपको जितना भी ढकने की, छुपाने की कोशिश करता है, उतना ही वह साधना से दूर होता है।"

. . .और यह कहते-कहते गुरुदेव उठ खड़े हुए तथा आश्रम की ओर बढ़ गये, पर कुछ पंक्तियों में ही उन्होंने एक ऐसे रहस्य पर से परदा हटा दिया था, जो सर्वथा अपरिचित था।

त्वदीयं वस्तु गोविन्द! तुभ्यमेवं समर्पये

विदाई का क्षण था, योगी निखिलेश्वरानन्द भारी मन से अपने गुरु-चरणों से अलग होने को बाध्य हो रहे थे; गुरु ने आज्ञा दी— "मैंने तुम्हें जो काम सौंपा है, पहले उसको पूरा करना है". . . पर निखिलेश्वरानन्द की आत्मा छटपटा रही थी, वे एक क्षण के लिए भी गुरु-चरणों से अलग नहीं होना चाहते थे, उनके शरीर का रोम-रोम गुरु-चरणों पर न्यौछावर था, पर गुरु की आज्ञा भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण थी. . .

निखिल का शरीर उनके चरणों पर टिका हुआ था, गुरु ने अपनी दोनों बांहों से उन्हें ऊपर उठाया, आंसुओं से भरे चेहरे को अपनी ओर किया और बोले—

— "तुम मेरे सर्वाधिक प्रिय शिष्य हो. . . और मैं तुम्हारे जैसा शिष्य पाकर गौरव अनुभव कर रहा हूं। साधना और सेवा का तुमने जो उदाहरण उपस्थित किया है वह दुर्लभ है। मैं आज तुम पर अत्यधिक प्रसन्न हूं, तुम आज जो भी मांगोगे सहर्ष दे दूंगा, दुनिया की कोई भी शक्ति. . . कुछ भी तुम मांग सकते हो।"

निखिल ने एक सेकेण्ड के लिए गुरु के चेहरे की ओर देखा. . . और फिर नजरें चरणों पर टिका कर बोले— "जब आप मेरे पास हैं, तब मैं और क्या याचना करूं?. . . जब मैं अपने-आपको आपके चरणों में लीन कर ही चुका हूं, तो फिर मेरा अस्तित्व ही कहां रह गया है?. . . और जब मेरा अस्तित्व ही नहीं है, तो मैं क्या मांगूं?. . . मेरा यह शरीर, मन, प्राण, देह, रोम, प्रतिरोम सब कुछ ही तो आपका है—

"त्वदीयं वस्तु गोविन्द! तुभ्यमेव समर्पये"





अतीत के झरोखे से . . .

छाया से भी अधिक साथ देने वाला स्वामी निर्भयानन्द

स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी के बिना हिमालय का वर्णन अधूरा है। हिमालय स्थित साधकों, संन्यासियों, योगियों और तपस्वियों का जब भी जीवन लिखा जायेगा, तो उसमें प्रथमतः उभर कर आने वाला नाम होगा– "स्वामी निखिलेश्वरान्द जी।"

स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी एक प्रखर व्यक्तित्व हिमालय के. . . हिमालय की एक अद्वितीय विभूति, मैंने उन्हें देखा है और निकट से जानने का प्रयत्न किया है। साहस और हिम्मत का एक सागर-सा लहराता रहता उनके हृदय में। साधना के क्षेत्र में नित नये प्रयोग करना उनका स्वभाव था। यदि यह ज्ञात होता, कि हिमालय के उस स्थान पर पहुंचना कठिन है, तो उनमें जिद्द की प्रवृत्ति जरूरत से ज्यादा आ जाती और उसी दिन से उनके मन में यह धारणा बन जाती, कि मुझे उस स्थान पर हर हालत में पहुंचना ही है और जब तक वे हिमालय के उस दुर्गम और अगम्य स्थान पर नहीं पहुंच जाते, तब तक उन्हें चैन नहीं मिलता।

यदि कोई उनके सामने यह कह देता, कि इस प्रकार की साधना तो सम्भव ही नहीं है, तो वे उस साधना के पीछे दीवानों की तरह झपट

पड़ते, उसके बारे में जितनी भी जानकारी होती, इकट्ठा करते; यदि उन्हें यह ज्ञात होता, कि इस साधना के बारे में जानने वाला व्यक्ति हिमालय के दूसरे कोने पर बैठा हुआ है, तो भी वे वहां जाते और उससे जब तक उस साधना-रहस्य को प्राप्त नहीं कर लेते, तब तक चैन से नहीं बैठते. . . एक अजीब-सा तूफान था उनके हृदय में।

उनका सारा शरीर अपने-आप में ही आकर्षक और प्रभावपूर्ण था। वे शरीर पर केवल अधोवस्त्र ही पहने रहते, न तो अन्य क़िसी प्रकार का सामान अपने साथ रखते और न ही किसी प्रकार की संग्रहवृत्ति उनके मन में थी। उन्हें यह विश्वास था, कि मैं जब भी और जो भी चाहूंगा मुझे प्राप्त हो ही जायेगा. . . और यह विश्वास ही उनके जीवन की पूर्णता और उन्नति का आधार रहा।

आर्यों की तरह उनका भरा-पूरा वक्षस्थल अपने-आप में ही प्रभावपूर्ण था, जो देखने वाले को अन्दर तक हिला देता था; उनके पास था दूसरों को पूर्णरूप से सम्मोहित बना देने वाला चुम्बकीय व्यक्तित्व, जिसकी वजह से प्रत्येक संन्यासी और योगी उनके सम्पर्क में आने के लिए लालायित रहता, उनके मन में यह लालसा और इच्छा बनी रहती, कि जैसे भी हो निखिलेश्वरानन्द के सम्पर्क में जाना ही है, किसी भी हालत में एक-आध दिन उनके साथ व्यतीत करना ही है, परन्तु ऐसा बहुत कम सम्भव हो पाता, क्योंकि निखिलेश्वरानन्द स्वयं अपने कार्यों में, अपनी साधनाओं में और अपनी उच्चता में ही व्यस्त रहने वाले व्यक्तित्व थे। उस समय हिमालय के लगभग सभी स्थानों पर उनकी चर्चा थी, प्रत्येक संन्यासी की जुबान पर उनका ही नाम था, प्रत्येक योगिनी और संन्यासिनी उनके बारे में ही चर्चा करती रहती, एक प्रकार से यह व्यक्तित्व किंवदन्ती-सा बन गया था हिमालय में।

— और इसके कई कारण थे, उनका सुदृढ़ और बलिष्ठ शरीर निमंत्रण देता हुआ प्रतीत होता था। समुद्र के समान उनका वक्षस्थल सामने वाले को उद्वेलित कर देने के लिए काफी था। साधना के क्षेत्र में उनके पास जो उपलब्धियां थीं, वे सैकड़ों संन्यासियों के पास मिल कर भी नहीं थीं। उनके हृदय में जितना तूफान और जोश था, वह अपने-आप में आश्चर्यजनक था।

निरन्तर भ्रमण करता हुआ, एक स्थान से दूसरे स्थान पर विचरण करता हुआ, हिमालय के नित्य नवीन स्थानों को खोजता हुआ, दुर्लभ और अगम्य स्थानों की यात्रा करता हुआ और उच्चकोटि के संन्यासियों के बीच रहता हुआ, वह व्यक्तित्व अपने-आप में हिमालय का एक प्रतिरूप-सा बन गया था।

उस समय उनकी चर्चा हिमालय के चप्पे-चप्पे पर थी, हर जुबान पर उन्हीं का नाम था उस समय उनके बारे में इतनी अधिक कहानियां प्रचलित हो गई थीं, कि समझ नहीं पड़ रहा था, कि क्या यह सब सही है? परन्तु जब उन कहानियों के मूल में जाने की कोशिश की जाती, तो वे सही उतरतीं और यह सब देख-सुन कर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता।

अन्धकार में प्रकाश की लहर

बचपन में ही उनके मन में हिमालय के प्रति प्रेम और आकर्षण रहा, इसीलिए जब उन्होंने होश संभाला, तो सारे बन्धनों को, सारे सम्बन्धों को नकारते हुए वे हिमालय की ओर चल पड़े। उस समय पूरे हिमालय में कोई साधु या योगी कहीं दूर बैठा हुआ साधना कर रहा है, तो कोई साधु या संन्यासी कहीं और, उनमें परस्पर कोई सम्बन्ध, साहचर्य नहीं था, सब अपने-आप में अलग-अलग से मस्त थे। एक प्रकार से देखा जाय, तो उनमें परस्पर एक-सूत्रता की कमी थी और इसीलिए यह स्पष्ट नहीं था, कि हिमालय में कहां-कहां पर उच्चकोटि के संन्यासी, योगी या साधक हैं, उनके पास क्या-क्या सिद्धियां हैं, उनसे कैसे सम्पर्क कायम किया जा सकता है? सब कुछ अज्ञात था, सब कुछ अन्धकार से ग्रस्त-सा था।

— और ऐसे ही समय में एक प्रखर किरण के रूप में निखिलेश्वरानन्द हिमालय में आये और उन्होंने इन बिखरे हुए सूत्रों को जोड़ने की क्रिया प्रारम्भ कर दी। एक-दूसरे को समीप लाने, एक-दूसरे से परिचित कराने में उन्होंने सेतु का काम किया। उनके मन में यह भावना भर दी, कि अलग बैठे रहने से कुछ भी सम्भव नहीं है। यदि जीवन में कुछ प्राप्त करना है, तो परस्पर एक-दूसरे के सहयोग से ही, ज्ञान का आदान-प्रदान करने से ही जीवन में पूर्णता आ सकती है।

— और इसके लिए उन्होंने हिमालय में स्थान-स्थान पर संन्यासियों के सम्मेलन प्रारम्भ किये, उनके अहं को टटोला, उनके गरूर और घमण्ड को नीचा करने का प्रयत्न किया, उनको एहसास दिलाया, कि मैं तुमसे साधनाओं और सिद्धियों के क्षेत्र में किसी भी प्रकार से कम नहीं हूं, फिर भी यदि तुम्हारे पास आया हूं, तो इसके पीछे मेरा स्वयं का कोई स्वार्थ नहीं है, अपितु हिमालय को एक सूत्र में बांधने की प्रक्रिया है, पूर्वजों के ज्ञान को स्थायित्व देने की क्रिया है, साधनाओं को प्रामाणिकता के साथ उजागर करने की भावना है।

— और यह बात उनकी समझ में आई भी, उन्होंने एहसास किया, कि जो सामने व्यक्तित्व खड़ा है, वह हम से सही मायनों में बढ़-चढ़ कर है, हम से ज्यादा सिद्धियां इसके पास हैं, हम से ज्यादा अनुयायी इसके आगे-पीछे घूम रहे हैं और ऐसा करके उन्होंने एक महान कार्य किया। बिखरे हुए संन्यासियों को एक साथ बांधा, उनको एक रास्ता दिया, उनको परस्पर मिलने, ज्ञान का आदान-प्रदान करने का अवसर दिया और उनमें जो जड़ता थी, जो स्थिरता थी वह दूर हुई, पूरे हिमालय में एक हलचल-सी मच गई, एक एहसास हुआ कि बहुत कुछ कार्य करना बाकी है, यदि हमारे पास दो-चार साधनाएं या दो-चार सिद्धियां हैं, तो उससे सब कुछ प्राप्त नहीं हो सकेगा, वह तो ठीक वैसा ही है, जैसा कि कोई व्यक्ति सोंठ को प्राप्त कर वैद्य बन जाय।

स्वामी निर्भयानन्द

पर इस भाग-दौड़ से वे थक-से गए थे। निरन्तर घूमते रहना और जो समय बच जाय वह साधनाओं में व्यतीत कर देना, अपने-आप में कठिन कार्य था। कई हजार मील फैला हुआ हिमालय, तिब्बत, नेपाल, मानसरोवर आदि इतनी अधिक दूरी पर थे, कि उन सब को समेटना कोई आसान कार्य नहीं था, परन्तु उनकी तो एक ही लगन थी, कि यह कार्य अगर अभी नहीं हुआ, तो भविष्य में कभी नहीं हो सकेगा। यदि इन संन्यासियों को इस समय एक-सूत्रता में आबद्ध नहीं किया, तो ये संन्यासी या योगी कभी भी संगठित नहीं हो सकेंगे। यदि अभी उनके अहंकार को दूर नहीं किया, तो

ये सारे अपने ही एक संकुचित-से घेरे में सांस लेते रहेंगे. . . और इसके लिए जिस भाग-दौड़ की आवश्यकता है, जिस मेहनत की जरूरत है वह तो करनी ही पड़ेगी।

इससे भी ज्यादा तनाव का कारण था, उनके बेतहाशा बढ़ते हुए शिष्य। वे कहते— "मुझे शिष्यों की जरूरत नहीं है, मैं तो भीड़ को नहीं चाहता, मुझे प्रदर्शन या दिखावा पसन्द नहीं है, मैं अपने जीवन में एक विशेष उद्देश्य को लेकर आया हूं और वह उद्देश्य मुझे पूरा करना है!"

— परन्तु इतना होने के बावजूद भी भगवे वस्त्र पहिने संन्यासी उनके चारों ओर बने रहते, वे जहां भी जाते, संन्यासी शिष्य और शिष्याएं उनसे पहले ही वहां पहुंच जाते। उन सब की केवल मात्र यही आकांक्षा होती, कि वे उन्हें गुरु रूप में प्राप्त हो जायें। उन लोगों की एक ही इच्छा होती, कि यह व्यक्तित्व उन्हें शिष्य रूप में स्वीकार कर ले। एक बार सिर पर हाथ रख दे, एक बार अपने होठों से उनके लिए "शिष्य" शब्द उच्चरित कर दे, बाद में तो बाकी सब कुछ अपने-आप ही हो जायेगा, परन्तु यही तो कठिन था।

— पर इससे निखिलेश्वरानन्द जी की व्यस्तता जरूरत से ज्यादा बढ़ गई, निरन्तर श्रम करते रहने से थकावट के चिन्ह उनके चेहरे पर स्पष्ट रूप से झलकने लगे। निरन्तर यात्रा करने से उनका शरीर शिथिल-सा प्रतीत होने लगा। शिष्यों की, संन्यासियों की भीड़ चारों तरफ घिरी रहने से उनके तनाव में दिन-प्रतिदिन वृद्धि होने लगी।

इसके अलावा तनाव के और भी कई कारण थे— जो जमे हुए तथाकथित गुरु और संन्यासी थे, उनको यह सब कुछ अच्छा नहीं लग रहा था, वे इस आते हुए तूफान को देख कर भयभीत से थे, क्योंकि उनके पास कोई आधार नहीं था, साधना की कोई शक्ति नहीं थी, उनके पास था तो केवल आडम्बर तथा प्रदर्शन; इसी के बल पर उन्होंने संन्यासियों की भीड़ अपने आश्रम में एकत्र कर रखी थी और इस भीड़ की बदौलत ही वे अपने-आप को "गुरु" कहला रहे थे।

पर जब संन्यासियों और शिष्यों की भीड़ छंटने लगी, तो उनके हृदय में जलन-सी पैदा हुई और ऐसे कमजोर संन्यासी और तो कुछ कर

नहीं सकते, मार तो सकते ही हैं, अपने शिष्यों से उन पर प्रहार तो करवा ही सकते हैं. . . और ऐसा कई संन्यासियों ने किया भी। ऊपर से बड़े-बड़े पत्थर उनके ऊपर लुढ़का देना या जहां वो ठहरे हुए हैं, उस कुटिया में आग लगवा देना या जब वो अकेले हों, तो संन्यासियों और शिष्यों के द्वारा उन पर आक्रमण करवा देना उनका स्वार्थ साधन बन गया था, क्योंकि निखिलेश्वरानन्द के होने से उनके प्रदर्शन में, उनके आडम्बर में न्यूनता आने लगी थी, उनकी आय के स्रोत कमजोर होने लगे थे. . . और निरन्तर विविध प्रकार से प्रहार होने से यह व्यक्तित्व तनाव में था। बाहर से ये जितने ही ज्यादा संयत बने रहने का उपक्रम करते उतना ही ज्यादा अन्दर से परेशान रहते।

इस तनाव का प्रभाव भी उनके चेहरे पर और उनके शरीर पर पड़ने लगा था, निरन्तर दबाव से उनके कार्य में शिथिलता-सी आने लगी थी। इसमें तो कोई दो राय नहीं, कि यह व्यक्तित्व प्रारम्भ से ही जिद्दी और दृढ़ निश्चय वाला रहा है। खतरों से खेलने की आदत-सी पड़ गई है इन्हें, चुनौतियों को झेलने में इन्हें आनन्द आता है, परन्तु विश्वासघात अपने-आप में तनाव का एक प्रबल कारण बनता जा रहा था।

. . .और ऐसे ही क्षणों में एक युवा संन्यासी इनके सम्पर्क में आया, जिसे "निर्भयानन्द" कहा जाता था, वास्तव में ही यह संन्यासी अपने-आप में बलिष्ठ, साहसी और हिम्मती तो था ही, साथ ही साथ अपने नाम के अनुरूप निर्भय भी था। भय तो उसके पास फटकता ही नहीं था, वह निखिलेश्वरानन्द जी की छाया की तरह उनके साथ रहने लगा।

साल भर के भीतर तो वह निखिलेश्वरानन्द जी का प्रिय शिष्य बन गया, उसके बिना निखिलेश्वरानन्द जी की कल्पना ही नहीं हो पा रही थी, जहां निखिलेश्वरानन्द जी रहते, वहीं निर्भयानन्द भी।

उसने क्या नहीं किया निखिलेश्वरानन्द जी के तनाव को दूर करने के लिए, बराबर उनके साथ बना रहा। दूसरे संन्यासियों के कुचक्र पहले से ही भांप जाता और बिना निखिलेश्वरानन्द जी को पूछे ही उन कुचक्रों को तहस-नहस कर डालता। समय पड़ने पर पन्द्रह-बीस बदमाश संन्यासियों पर वह अकेला ही भारी पड़ता— और इसकी भनक निखिलेश्वरानन्द जी

को नहीं लगने देता।

निखिलेश्वरानन्द जी के छोटे-से-छोटे कार्य का वह बराबर ध्यान रखता। उनके चारों ओर उमड़ती हुई भीड़ को नियंत्रित करता और उस भीड़ में से उन मोतियों को निकाल लेता, जो वास्तव में ही आगे जाकर सफल शिष्य या साधक बन सकते थे। बाकी लोगों को दृढ़ता पूर्वक भगा देता। इस बात का पूरा ध्यान रखता, कि निखिलेश्वरानन्द जी को किसी प्रकार का कोई तनाव न हो। कोई समस्या की बात उन तक पहुंचे ही नहीं, इसके लिए वह बराबर प्रयत्नशील बना रहता। एक क्षण भी निखिलेश्वरानन्द जी को वह अकेला नहीं छोड़ता, छाया की तरह बराबर उनके साथ बना रहता। रात को जब निखिलेश्वरानन्द जी थक कर चूर हो लेट जाते, तो निर्भयानन्द उनके पैरों की मालिश करता और तब तक पैर दबाता रहता, जब तक कि उन्हें नींद नहीं आ जाती।

सुबह निखिलेश्वरानन्द जी के उठने से पहले ही उठ जाता, उनके वस्त्रों को सलीके से जमा देता, स्नान, संध्या-पूजन आदि की व्यवस्था कर देता, और प्रत्येक क्षण इस बात का ध्यान रखता, कि उन्हें किसी प्रकार का कोई अभाव या कष्ट न हो।

एक शिष्य में चार गुण होने चाहियें— प्रथम तो वह गुरु की इच्छा, गुरु के मन की बात पलक झपकते ही समझ जाय और उसे पूरा कर ले।

दूसरा, उसके जीवन का एक ही प्रयत्न होना चाहिए, कि गुरु को मानसिक संताप से दूर रखे, जिससे कि वे ठोस रचनात्मक कार्य कर सकें, और उनके तनावों को वह अपने ऊपर झेल ले।

तीसरा, गुरु के पूछने पर चतुर मंत्री की तरह सही सलाह दे और गुरु जो भी आज्ञा दें उसे बिना नू-नच किये स्वीकार करे और पूरा कर दे।

चौथा, गुरु के सामने जल की तरह निर्मल और वृक्ष की तरह विनीत बना रहे; आलस्य, प्रमाद, विलम्ब और शिथिलता पास न फटकने दे— और ये चारों ही गुण निर्भयानन्द में थे।

जब एक बार निखिलेश्वरानन्द जी तेज गर्मी से बीमार हो गये,

और कुछ दिनों तक उन्हें केदारनाथ के आगे वासुकी झील के पास विश्राम करना पड़ा, तो उसने जिस प्रकार से उनकी सेवा की, वह अपने-आप में अकथनीय है। वह उनकी उल्टी को साफ करता, मल-मूत्र की सफाई करता, दिन में कई बार उनके वस्त्र बदलता, सुपाच्य भोजन की व्यवस्था करता और जंगल के हिसंक पशुओं से रक्षा के लिए बराबर जागता रहता। सारे शरीर की मालिश करता हुआ, प्रत्येक क्षण सेवा में रत रहता। निर्भयानन्द की सेवा का ही यह परिणाम था, कि मृत्यु के मुख में गये हुए निखिलेश्वरानन्द जी को पुनः जीवन प्राप्त हो सका, वे पुनः स्वस्थ हो सके और जल्दी से जल्दी विचरण करने के योग्य बन सके।

किसी भी प्रकार के तनाव को निर्भयानन्द पहले अपने ऊपर झेल लेता, किसी भी प्रकार की बातचीत को वह पहले स्वयं स्वीकार कर लेता और कुटिया के बाहर ही उसका समाधान कर देता। संन्यासियों के सम्मेलन की व्यवस्था करता, उन्हें निमंत्रण भेजता, एकत्र करता और सबसे बड़ी बात कि उन पर नियंत्रण बनाये रखता।

वास्तव में ही निर्भयानन्द सेवा की साकार प्रतिमा थे, शिष्य का जो स्वरूप होना चाहिए, वह निर्भयानन्द के माध्यम से जाना जा सकता है।

निखिलेश्वरानन्द जी के जीवन के सात वर्षों तक वह छाया की तरह साथ रहा, इन सात वर्षों में उसने एक मिनट भी निखिलेश्वरानन्द को अकेला नहीं छोड़ा। इन सात वर्षों में उसने एक क्षण के लिए भी निखिलेश्वरानन्द जी की सेवा में न्यूनता नहीं आने दी, एक बार भी उनके सोने से पहले नहीं सोया, एक बार भी उनके उठने के बाद नहीं उठा, और उसमें कुछ ऐसा गुण आ गया था, कि बिना कहे ही निखिलेश्वरानन्द जी के संकेत को समझ जाता और वह कार्य तुरन्त कर डालता।

बाद में निखिलेश्वरानन्द जी ने उसकी सेवा से प्रसन्न हो कर उसे अपने हाथों से उच्चकोटि की साधानाएं दे कर सिद्धाश्रम पहुंचाया, परन्तु मैं इसका साक्षी हूं, कि जब वह गुरु की उंगली पकड़ कर सिद्धाश्रम में प्रवेश कर रहा था, तो उसकी दोनों आंखें आंसुओं से भीगी हुई थीं, उसका कण्ठ अवरुद्ध था और उसके होठों पर शब्द थे— "गुरुदेव! सिद्धाश्रम से कई

गुना ज्यादा सुखदायक मेरे लिये तो आपका साहचर्य है, आपका स्पर्श है और आपकी सेवा है, जहां आप हैं, वहीं तो सिद्धाश्रम है।"

नारायणो त्वं निखिलेश्वरो त्वं
माता पिता गुरु आत्म त्वमेवं।
ब्रह्मा त्वं विष्णू रुद्र त्वमेवं
सिद्धाश्रमो त्वं गुरुवं प्रणाम्यं





दिव्य धाम सिद्धाश्रम

जीवन में हम इस विश्व का जो भाग देख रहे हैं या देखा है, वह तो बहुत ही न्यून है, इसके अतिरिक्त भी इस विश्व में ऐसा बहुत कुछ है, जो बिरले लोगों द्वारा ही देखना सम्भव होता है, सिद्धाश्रम भी एक ऐसा ही विश्व का दिव्य-धाम है, जो अपने-आप में अद्वितीय और अनिवर्चनीय है। पिछले दस हजार वर्षों से जितने भी उच्चकोटि के ग्रन्थ रचे गये, उनमें सिद्धाश्रम का प्रमुखता से उल्लेख है।

हमारी बुद्धि स्थूल है, इसलिए एक सीमा से आगे न तो हम सोच सकते हैं और न ही विश्वास कर सकते हैं। आज भी इस सिद्धाश्रम में दो हजार से पांच हजार वर्ष की आयु प्राप्त योगी विद्यमान हैं। उच्चकोटि की साधनाओं से सम्पन्न सिद्ध साधक हैं। यह एक ऐसा दिव्य धाम है, जहां आज भी भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, वशिष्ठ, याज्ञवल्क्य आदि इतिहास पुरुषों को प्रत्यक्षतः देखा जा सकता है। यह एक ऐसा स्थान है, जहां पर बुढ़ापे और मृत्यु का कोई आघात सहन नहीं करना पड़ता। यह एक ऐसा वरदान है, जहां पहुंचना मानव-जीवन की पूर्णता कही जाती है।

"स्वामी अभयानन्द जी" ऐसे ही सिद्ध योगियों में से हैं, जो तीन हजार वर्ष की आयु प्राप्त करके भी चिरयौवनमय हैं, उनसे सिद्धाश्रम में होने वाले कई

उत्सवों में से एक महोत्सव 'दिव्यपात समारोह' का आंखों देखा विवरण हमें प्राप्त हुआ है। जो कि पाठकों के लिए वरदान स्वरूप है।

यह मानव-जीवन क्षण भंगुर है। हम व्यर्थ में ही घमण्ड करते हैं कि हम स्वस्थ हैं, सम्पन्न हैं, यौवनमय एवं सुन्दर हैं, परन्तु यह सब कुछ तो नश्वर है, कालचक्र के निरन्तर घूमते रहने से यौवन वृद्धावस्था में परिवर्तित हो जाता है, सुन्दरता झुर्रियों में बदल जाती है और व्यक्ति का शरीर एक मुट्ठी भर राख में परिवर्तित हो जाता है। अधिकांश व्यक्ति इस मुट्ठी भर राख की परिणति की ओर ही अग्रसर हैं। बहुत ही कम ऐसे व्यक्ति हैं, जो अपने जीवन के मध्यकाल में ही उच्चकोटि का निर्णय ले लेते हैं और इस निर्णय को क्रियान्वित करने के लिए समर्थ गुरु के सान्निध्य में साधना कर सशरीर सिद्धाश्रम जाने में सक्षम हो जाते हैं, ऐसे ही व्यक्ति सही अर्थों में पुरुष हैं, जो अपने जीवन-पथ का निर्माण स्वयं करते हैं, जो उस अलौकिक दृश्य के भागीदार बनते हैं, जो अपने-आप में अद्वितीय है।

सिद्धाश्रम की मिट्टी चन्दन की तरह ललाट पर लगाने योग्य है, तपस्या से सारा आश्रम अपने-आप में सुगन्धित, दिव्य और मनोहारी है, जहां का तृण-तृण मुस्कराता है, जहां पुष्पों से सारा आश्रम सौरभमय बना रहता है, चिरयौवनमय साधिकाओं और साधकों के द्वारा उच्चरित मंत्रों से जहां का वन-प्रांतर गूंजता रहता है, ऐसे आश्रम का उल्लेख लगभग सभी उच्चकोटि के ग्रन्थों में पाया जाता है। सामान्य जन की दृष्टि और ज्ञान से यह आश्रम अछूता ही बना रहा है; इसका कारण यह है, कि यहां के साधक अपने-आप में ही लीन रहे, जन-साधारण से उनका न तो सम्पर्क था और न वे इसके लिए लालायित रहे।

तीन सौ वर्ष पहले एक महत्त्वपूर्ण निर्णय हुआ, जिसमें तय किया गया कि जन-साधारण को इस आश्रम के बारे में पूरा-पूरा ज्ञान होना आवश्यक है। प्रयत्न यह हो कि यहां से उच्चकोटि के योगी और साधक जन-साधारण में जायें, उन्हीं के बीच, उन्हीं के बनकर, उन्हीं की तरह रहें. . . और भारत की पावन धरती पर साधनाओं और विद्याओं के ज्ञाता कई महायोगी और साधक जन-साधारण में गृहस्थ और साधु रूप में रहे और उन्होंने यथा सम्भव इस प्रकार की साधनाओं से जन-साधारण को परिचित कराया।

यद्यपि इस कठोर भूमिका के लिए उन लोगों को जरूरत से ज्यादा संत्रास, अपमान, दुःख और वेदना सहनी पड़ी, परन्तु फिर भी उन्होंने पूरे धैर्य के साथ

सिद्धाश्रम की परम्पराओं और आज्ञाओं का निर्वाह किया। यज्ञों और साधनाओं के माध्यम से उन्होंने जन-साधारण को इस अद्वितीय आश्रम के बारे में जानकारी दी, परन्तु फिर भी यदि पिछले तीन सौ वर्षों का आंकलन किया जाय, तो ज्ञात होता है कि सामान्य व्यक्ति अत्यधिक तुच्छ बातों के लिए प्रयत्नशील रहा है। सन्देह, भ्रम और तार्किकता उन पर जरूरत से ज्यादा हावी रही है। प्रयत्न करने पर भी वे दिग्भ्रमित हैं। दृढ़ता, एकाग्रता और सर्वस्व-समर्पण की उनमें न्यूनता है। फलस्वरूप बहुत ही कम जन-सामान्य अपने पुरुषार्थ और प्रयत्नों से इस आश्रम तक पहुंच सके, पर पहुंचने के बाद उन्होंने अनुभव किया, कि जीवन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, जो कि क्षुद्र वस्तुओं — पैसा, पद आदि के पीछे भागने के लिए नहीं, अपितु इस प्रकार के आश्रम तक पहुंचने के लिए है, जो अपने-आप में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और अद्वितीय है!

यहां साधकों को उन साधनाओं में दीक्षित किया जाता है, जो उच्चकोटि की कही जाती हैं। ये ऐसी साधनाएं हैं, जो ईश्वर-प्राप्ति में सहायक होती हैं तथा प्रकृति पर पूर्णतः नियन्त्रण स्थापित करने में भी सहयोगी होती हैं। इनके माध्यम से व्यक्ति काल के अनवरत प्रवाह भूत, वर्तमान, भविष्य को देख पाने में समर्थ होता है। वह रोग, वृद्धावस्था एवं मृत्यु से ऊपर उठ जाता है। यहां आने पर इन साधनाओं के माध्यम से उसे उच्चकोटि की अनिवर्चनीय सिद्धियां और अतुलनीय मानसिक शांति प्राप्त होती है। उनके जीवन में हंसी-मुस्कराहट, ममत्व-प्रेम और माधुर्य का स्रोत प्रवाहित होने लगता है। एक-एक क्षण सार्थक हो जाता है. . . उच्चकोटि के मृत्युंजयी योगियों के चरणों में बैठना, उनसे वार्तालाप करना, उनके द्वारा प्रवचनों को सुनना, ऐसा लाभ है, जिसकी अपने-आप में कोई तुलना ही नहीं!

यह आश्रम एक ऐसा दिव्य स्थान है, जिसे शब्दों में बांधना सम्भव नहीं है. . . मीलों लम्बा-चौड़ा, जिसके एक ओर धवल बर्फ से आच्छादित कैलाश पर्वत है, तो दूसरी तरफ सिद्धयोगा झील का पारदर्शक जल, जिसमें स्नान करने पर स्वतः ही समस्त रोग समाप्त हो जाते हैं! जिनके किनारों पर साधिकाओं एवं अप्सराओं के कार्य-कलाप हैं, तो दूसरी ओर ध्यान में लीन योगियों के पुण्य दर्शन भी सहज सम्भव हैं, जिनके दिव्य, शांत एवं तेजस्वी मुख-मण्डल से प्रकाश झरता रहता है, जिन्हें मृग शावक टुकुर-टुकुर निहारते रहते हैं।

वहां की पर्ण-कुटियां अपने-आप में दिव्य हैं, वहां के साधना-स्थल मनोहारी हैं। सौभाग्य की बात है कि हमारे बीच देव-दुर्लभ आश्रम विद्यमान है। ऐसे सिद्धाश्रम के योगी और साधक विद्यमान हैं, जिनके चरणों में बैठकर हम जीवन के रहस्यों

की गुत्थियां सुलझाने में सक्षम हो सकते हैं, फिर भी यदि हम अपने ही संकीर्ण घेरे में, तुच्छ मनोवृत्ति, संदेह, अविश्वास तथा भ्रम के कटघरे में ही आबद्ध रहें, तो हमारा इससे बड़ा दुर्भाग्य और क्या हो सकता है?

यहां सिद्धाश्रम में साधकों को उच्च व महत्त्वपूर्ण साधनाएं सम्पन्न कराई जाती हैं। एक निश्चित स्तर को प्राप्त करने के बाद उन साधकों पर दिव्यपात सम्पन्न किया जाता है, जिसके माध्यम से साधक अमरत्व प्राप्त कर सकते हैं।

सिद्धाश्रम दिवस

आज चारों ओर एक विशेष हलचल व्याप्त थी। छः विशिष्ट साधकों पर परम पूज्य योगीराज 'स्वामी सच्चिदानन्द जी' के द्वारा "दिव्यपात" होना था। यह उन साधकों के लिए अभूतपूर्व अवसर था। इनमें तीन स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी के, दो स्वामी गुणातीतानन्द जी के तथा एक मेरा शिष्य था। उन साधकों के लिए जीवन का यह एक अद्वितीय अवसर था. . . एक अनिवर्चनीय दिवस था, जबकि वे ब्रह्म से साक्षात्कार करने जा रहे थे। चारों ओर एक विशेष हलचल, एक विशेष आह्लाद, एक विशेष दिव्यता व्याप्त थी।

सिद्धयोगा झील के पूर्वी पार्श्व में परम्परानुसार समारोह के आयोजन की व्यवस्था हो रही थी। सामने सिद्धयोगा झील का नीला पारदर्शी जल भव्य प्रतीत हो रहा था, उसकी लहरों पर कुछ साधिकाएं और साधक स्नान करते हुए एवं नावों में विचरण करते हुए आह्लादित थे, पूर्वीय पार्श्व पर बहुत बड़ा मंच विद्यमान था, चारों तरफ से स्वतः दिव्य प्रकाश बिखर रहा था। झील के किनारे हजारों योगी, साधु और संन्यासी भगवत् श्री के दर्शन करने के लिए बैठे हुए थे। तपस्या के प्रभाव से उनके चेहरों पर एक अद्वितीय आभा दृष्टिगोचर हो रही थी। सभी की जटाएं पीछे लहरा रही थीं, काषाय वस्त्र पहने वे सभी दिव्यदूत से प्रतीत हो रहे थे। एक तरफ सैकड़ों साधिकाएं उत्तम वस्त्रों में बैठी हुई थीं, जिनके पुष्ट शरीर से एक ऐसी ज्योति, एक ऐसा प्रकाश प्रस्फुटित हो रहा था, जो इस धरती पर सम्भव ही न था।

मंच पर उच्चकोटि के महायोगी, ऋषि एवं साधक अपने-अपने आसनों पर विद्यमान थे। 'स्वामी सच्चिदानंद जी' के दाहिनी ओर महर्षि वशिष्ठ, याज्ञवल्क्य, भृगु, कृपाचार्य, विश्वामित्र आदि सुशोभित थे, बायें पार्श्व में स्वामी विद्युतानन्द, महायोगी अजानानन्द, स्वामी अखण्डानन्द, बहिन निरूपमा, बहिन दिव्या, योगीराज

स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी, योगी सत्यानन्द जी आदि विद्यमान थे। बीच का आसन खाली था, जहां योगीराज सच्चिदानन्द जी आने ही वाले थे।

आज के इस महत्त्वपूर्ण अवसर पर मेनका और उर्वशी जैसी अप्सराएं भी स्वेच्छा से विद्यमान थीं, जो कि स्वस्तिवाचन नृत्य प्रस्तुत करने के लिए आतुर थीं। सिद्धाश्रम की परम्परा है कि महोत्सव से पहले वाग्देवी तथा स्वस्तिवाचन नृत्य सम्पन्न किया जाय।

छः साधक जिन पर दिव्यपात होना था, वे नीचे की ओर पंक्ति में बैठे थे। सामान्य लोक से जाने के बाद 'सिद्धयोगा झील' में स्नान करने से उनका यौवन लौट आया था। शरीर पर अपूर्व कान्ति और दिव्यता थी। आंखों में शांति एवं प्रसन्नता के भाव दृष्टिगोचर हो रहे थे। इन में चार साधक एवं दो साधिकाएं थीं। इन साधिकाओं ने भी साड़ी धारण कर रखी थी, शरीर अद्वितीय सौन्दर्य और तेज से दमक रहा था, आंखों में अपूर्व चमक और शांति की हिलोर थी, जिसमें सब कुछ समा जाने के लिए आतुर था।

तभी हलचल-सी हुई. . . सामने से महायोगी (सिद्धाश्रम के संचालक) स्वामी सच्चिदानन्द जी पधार रहे थे। साथ में सात-आठ अन्य योगी भी थे। उन्नत ललाट, गौर वर्ण तथा अपूर्व आभा से महायोगी वास्तव में एक अद्वितीय तपस्वी एवं आदि ऋषि जैसे प्रतीत हो रहे थे। ऐसा लग रहा था, जैसे कोई ऋग्वेदकालीन ऋषि हमारे सामने आ रहे हों। चेहरे के चारों ओर व्याप्त प्रभा मण्डल से सारा वातावरण पवित्र और दिव्य बन रहा था।

महायोगी आकर मध्य में अपने आसन पर बैठ गये। अन्य योगी और तपस्वी भी यथास्थान बैठ गये। महायोगी ने अपने शांत, करुण नेत्रों से समस्त सिद्धाश्रम के साधकों और तपस्वियों को देखा। उन छः साधकों को भी देखा, जो आज सिद्धाश्रम के अभिन्न अंग बनने जा रहे थे, उन साधिकाओं और तपस्विनियों की ओर भी देखा, जिन्होंने साधना के बल पर उच्चतम स्थिति को प्राप्त किया था।

सबसे पहले स्वामी प्रणीतानन्द जी ने उठकर उन छः साधकों का परिचय कराया। जो आज दिव्यपात प्राप्त करने जा रहे थे, ये सभी अपनी साधनात्मक योग्यता एवं गुरु-भक्ति के द्वारा इस स्तर तक पहुंच सके थे, इनमें एक साधक बंगलौर से, एक बहिन गुजरात से, दो बंगाल, एक हिमाचल प्रदेश से तथा एक बहिन ब्रिटेन से थीं। सिद्धाश्रम प्रांतों एवं धर्मों के कठघरे में आबद्ध नहीं है। संकीर्णता का यहां

कोई स्थान नहीं है। सभी साधक-साधिकाएं उन्मुक्त हैं, भय रहित हैं, संकीर्णताओं से दूर हैं।

जिन गुरुओं के सान्निध्य में साधनाएं सम्पन्न कर ये साधक सिद्धाश्रम तक पहुंच सके थे और पहुंचने के बाद दिव्यपात सहन करने की सामर्थ्य और स्तर प्राप्त कर सके थे, उन गुरुओं की अभ्यर्थना भी की गई। साधकों को बताया गया कि दिव्यपात जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि है और यह परम सौभाग्य है, कि दिव्यपात सिद्धाश्रम की धरती पर सिद्धयोगा झील के किनारे परम योगी स्वामी सच्चिदानन्द जी के सान्निध्य में सम्पन्न होने जा रहा है। इससे बड़ा सौभाग्य और क्या हो सकता है!

फिर परम योगी स्वामी सच्चिदानन्द जी की अनुमति लेकर किंकर स्वामी द्वारा छहों साधकों पर सातों समुद्रों तथा एक सौ आठ पवित्र नदियों के जल का प्रोक्षण किया गया, सिद्धयोगा झील के जल से परिमार्जन किया गया, जिससे कि उनका शरीर रोग, वृद्धता, मृत्यु से रहित होकर दिव्यता को प्राप्त कर सके। तत्पश्चात् महायोगी विज्ञानानन्द जी ने छहों साधकों को पहिनने के लिए "सिद्ध-वस्त्र" भेंट किये, जो काषाय होते हुए भी उच्चकोटि के मंत्रों से परिपूर्ण थे। भगवत्पाद शंकराचार्य ने मृग-चर्म भेंट किये और महर्षि वशिष्ठ ने उन्हें दिव्य-दण्ड दिया, जो कि वीतराग का प्रतीक है। बहिन मदालसा ने परम्परानुसार इन छहों के बालों में दिव्य गंध प्रवाहित की और स्वामी निखिलेवरानन्द जी ने अष्टगंध से छहों साधकों के ललाट पर तिलक कर आर्शीवाद दिया, जिससे कि वे जीवन में पूर्ण ब्रह्मत्व प्राप्त कर सकें।

प्रारम्भिक क्रिया सम्पन्न होने के बाद छहों साधकों को पांच-पांच मिनट का समय दिया गया, जिससे कि वे अपने अनुभवों, अपने गुरु और साधना-क्रम के बारे में विचार प्रस्तुत कर सकें। इसके बाद 'महर्षि गौविन्दपादाचार्य' (भगवत्पाद स्वामी शंकराचार्य जी के गुरु) ने इन छहों साधकों के हाथों में दिव्य जल देकर संकल्प सम्पन्न कराया, कि वे अपने जीवन में भारतीय साधनाओं के उच्च आदर्शों की रक्षा करने में प्रयत्नशील बने रहें।

संकल्प के बाद त्रिजटा अघोरी ने उनके पूरे शरीर को विशेष कवच मंत्र से सुरक्षित किया, जिससे कि उनके शरीर पर किसी प्रकार का कोई वेग प्रभावित न कर सके, सामान्य जन-लोक में रहने पर भी उन पर किसी प्रकार के तंत्र या प्रयोग का प्रभाव व्याप्त न हो सके। इसके बाद स्वामी गुणातीतानन्द जी ने उन्हें

अमृतपान कराया, जो कि स्थायित्व तथा अमरत्व से युक्त था।

इन सब क्रियाओं में साधक अत्यधिक रुचि और आह्लाद के साथ भाग ले रहे थे। वास्तव में ही उनके चेहरे इस तथ्य को स्पष्ट कर रहे थे कि उन्होंने सही अर्थों में जीवन जीया है, इस माटी की काया को दिव्य काया बनाया है, सशरीर सिद्धाश्रम में गुरु-कृपा से प्रवेश पा सके हैं और उन्हीं की कृपा से आज इस स्तर तक पहुंच सके हैं, जो एक अद्वितीय महोत्सव. . . दिव्यपात महोत्सव में भाग लेने में सफल हो सके हैं।

प्रारम्भिक क्रियाएं सम्पन्न करने के बाद महर्षि याज्ञवल्क्य ने विघ्न विनायक भगवान् गणपति का आवाहन किया, जिससे कि वे सशरीर वहां विद्यमान रहकर इस महोत्सव को पूर्णता देने में सहायक हों, देवी-देवताओं और सभी ज्ञात-अज्ञात योगियों और तपस्वियों का वेदोक्त घोष के साथ आवाहन किया, कि वे वहां उपस्थित हों और अपनी उपस्थिति से समारोह को दिव्यता प्रदान करें। तत्पश्चात् भगवती महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती का आवाहन करने के साथ-साथ गायत्री का भी आवाहन कर उनसे प्रार्थना की गई, कि वे विद्यमान होकर इन साधकों को पवित्रता और दिव्यता प्रदान करें। यह केवल परम्परा-निर्वाह ही नहीं था, अपितु जिन-जिन देवी-देवताओं को मंत्रों द्वारा आवाहित करते थे, वे स्वयं प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित होकर अपनी दिव्यता से पूरे सिद्धाश्रम को आलोकित कर रहे थे।

गणपति प्रार्थना एवं भगवती गायत्री की उपस्थिति के बाद परम्परानुसार अद्वितीय सुन्दरी अप्सरा मेनका ने मंगल वाद्यों के साथ 'स्वस्तिवाचन नृत्य' प्रारम्भ किया, जो परम्परानुसार आवश्यक माना गया है। हमारी भारतीय परम्परा में धार्मिक एवं साधनात्मक कृत्यों के पूर्व मंगल वाद्य, मंगल ध्वनि एवं मंगल नृत्य प्रस्तुत करने का प्रावधान है। इसी परम्परा के अनुसार मेनका ने यह नृत्य प्रारम्भ किया। संसार की अद्वितीय, अनिन्द्य सुन्दरी के नृत्य ने अपूर्व समां चारों ओर व्याप्त कर दिया, जिसकी कोई तुलना ही नहीं थी. . . एक अजीब और अपूर्व दृश्य था. . . एक अलौकिक वातावरण था, कल्पना करें कि सिद्धाश्रम की दिव्य भूमि, सिद्ध योगा झील के किनारे देवताओं और योगियों, ऋषियों और ब्रह्मवेत्ताओं के सामने हजारों योगी एवं साधक बैठे हों, चारों तरफ पवित्रता का वातावरण हो, जिन योगियों को इस जीवन में देखना ही सम्भव न हो, जिन देवताओं की साधना जीवन भर करने पर दर्शन सम्भव न हो, उनकी उपस्थिति में ऐसा अपूर्व नृत्य वही देख सकता है, जो सही अर्थों में साधक होता है, जो सही अर्थों में शिष्य होता है, जिस पर गुरुदेव

की कृपा है. . . और जो अपने गुरु की कृपा से सिद्धाश्रम में जाने का दृढ़ संकल्प लिये हुए होते हैं।

लगभग पैंतालीस मिनट तक यह नृत्य चलता रहा और पैंतालीस मिनट में मेनका ने मुद्राओं एवं चेहरे की भाव-भंगिमाओं के माध्यम से ऋग्वेदकालीन ऋषियों से आज तक की साधनाओं का जीवन्त चित्रण प्रस्तुत किया, वह अपने-आप में अपूर्व एवं अद्वितीय था। सिद्धाश्रम की धरती का कण-कण इस नृत्य से अभिभूत होकर साधु-साधु कह उठा।

नृत्य के बाद छहों साधकों द्वारा आत्म-पूजन एवं गुरु-पूजन की विधि सम्पन्न कराई गई। साधकों ने अपने गुरुओं के चरणों में अपने-आप को समर्पित करते हुए अश्रुपूरित आंखों से कृतज्ञता ज्ञापित की, कि उनकी कृपा से वे आज साधना के उस स्तर तक पहुंच सके हैं, जो दिव्यपात क्रिया कहलाती है। गुरुओं ने उन सभी के सिर पर वात्सल्य पूर्ण हाथ फेर कर आशीर्वाद दिया, कि वे अपने जीवन में पूर्णत्व प्राप्त कर सकें और चिन्ता, भय रहित हो विपत्तियों, आलोचनाओं तथा बाधाओं का सामना करते हुए अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर हो सकें।

अन्त में परम पूज्य योगीराज स्वामी सच्चिदानन्द जी उठ खड़े हुए। ऐसा लगा, कि जैसे पूरा हिमालय पवित्रता के साथ उस स्थान पर उठ खड़ा हुआ हो। उपस्थित सभी साधकों और तपस्वियों के चेहरे आह्लाद से दीप्त हो उठे।

स्वामी जी ने सभी को आशीर्वचन कहते हुए कहा— "सिद्धाश्रम की एक परम्परा है, एक मर्यादा और नियमबद्धता है। अत्यधिक परिश्रम करने पर ही साधक अपने गुरु का प्रिय बन सकता है और उच्चकोटि की साधनाओं में भाग लेकर सफलता प्राप्त कर सकता है। इन छहों साधकों ने जिस निष्ठा और एकाग्रता के साथ साधना कर, जिस भाव-भूमि को स्पर्श किया है, वह सराहनीय है। मैं इन सभी को आशीर्वाद देता हूं कि ये अपने जीवन में ब्रह्मत्व प्राप्त कर, चिरयौवनमय रहते हुए विजय प्राप्त कर सकें, अमृतत्त्व प्राप्त कर अनिवर्चनीय ज्योति प्राप्त कर सकें।"

उपस्थित समुदाय शांत और दत्तचित होकर उस युग पुरुष की वाणी का श्रवण कर रहा था, जिनका सारा शरीर तपस्या से आलोकित था, जिनके नेत्रों से अमृत और स्नेह को बरसता हुआ सभी अनुभव कर रहे थे, जिनके आशीर्वाद के तले यह भारतवर्ष और विश्व मानवीय आदर्शों से आपूरित होकर गतिशील है।

छहों साधकों को अपने स्थान पर खड़ा होने के लिए कहा गया। दिव्यपात क्रिया से पूर्व योगीराज ने अमृत बिन्दुओं से उन्हें सन्निहित किया और फिर उन्हें कहा गया, कि वे नेत्रों के माध्यम से दिव्यपात को अपने पूरे शरीर में और अंतर में समाहित करें. . . देखते ही देखते भगवत्पाद योगी श्रेष्ठ स्वामी सच्चिदानन्द जी का सारा शरीर अलौकिक तेज से परिपूर्ण हो उठा। ताम्रवत् लालिमा लिए हुए उनका शरीर ब्रह्मत्व तेज से जगमगा रहा था। आंखों से एक ऐसा तरंग-पुञ्ज प्रवाहित होने लगा, जिसे शब्दों में बांधना सम्भव नहीं है। उस प्रवाह के वेग को जब उन छहों साधकों ने अपने शरीर और अंतर् में समाहित किया, तो उनका शरीर भी ताम्र के समान लालिमामय हो उठा. . . जैसे कि पूर्व में अरुणोदय हुआ हो। रोम-रोम रोमाञ्चित हो उठा। चेहरे से एक अपूर्व आभा झलकने लगी, सिर के चारों ओर आभामण्डल-सा बन गया. . . ऐसा प्रतीत होने लगा कि वे छः साधक नहीं, अपितु छः तपस्या के समग्र पुञ्ज बन गये हैं। दिव्यपात प्रवाह से उनका सारा शरीर ज्योत्स्नित हो उठा. . . ऐसा लगा कि जैसे उन्हें साक्षात् ब्रह्मत्व प्राप्त हो गया हो।

मात्र साधक ही नहीं, उपस्थित समस्त साधु, संन्यासी, योगी, साधक-साधिकाएं इस अपूर्व वेग से रोमाञ्चित हो उठे। धरती का कण-कण नर्तन करने लगा. . . सिद्धयोगा झील की लहरें उठ-उठ कर थिरकने लगीं. . . ऐसा लगा जैसे पूरा ब्रह्माण्ड एक अपूर्व आभा से ज्योतिर्मय हो उठा हो. . .

वस्तुतः वह दृश्य, वह घटना इतिहास का एक आलेख बन कर रह गया; धन्य हैं वे योगी और साधक जो अपने जीवन में इस अपूर्व और अद्वितीय समारोह के भागीदार हो सके। ऐसी ही माताएं धन्य हैं, जिनके पुत्र साधना के बल पर इस स्तर तक पहुंच कर अपने जीवन को पूर्णत्व देने में समर्थ हो सके।





सिद्धाश्रम

जो इस धरती पर साकार है. . .

अब आ भी जाइये गुरुदेव! अब आ भी जाइये . . . चारों तरफ से वातावरण में यही ध्वनि गुंजरित होती सुनायी दे रही है . . . हर एक की अन्तरात्मा से यही पुकार आ रही है— अब आ भी जाइये।

वीरान हो गया है सिद्धाश्रम आपके बिना . . . भूल गए हैं पक्षी कलरव करना . . . खो गयी है सिद्धयोगा झील की तरंगों का नर्तन . . . शून्यवत हो गयी है सारी प्रकृति . . . निर्निमेष निहारते मृगों की आंखों में भी यही मूक भाव है . . . क्यों चले गये आप हम सभी को छोड़ कर?

जब से आप सिद्धाश्रम को छोड़ कर गये हैं, हम सभी प्राण विहीन हो गये हैं। आप की आज्ञा में बंधकर हम अपनी साधनाएं सम्पन्न करते हैं, किन्तु किसी कार्य में जरा सा भी आनन्द नहीं आता। औरों के हृदय की भी यही दशा होगी जो मेरी है, क्योंकि मैं जब किसी तरह अपने मन को बांधकर साधना करने बैठता हूं और मंत्र-जप प्रारम्भ करता हूं, तो अकस्मात कब मेरे मुख से उच्चरित होने वाले मंत्रों का स्थान आप के पावनतम नाम ग्रहण कर लेते हैं, होश ही नहीं रहता . . . और आप की याद में बैठे-बैठे ही कितना समय व्यतीत हो जाता है, इस बात का भी एहसास नहीं होता। घण्टों बीत जाने के बाद भी यही लगता है,

कि अभी तो पल मात्र ही व्यतीत हुआ है . . . और किसी कारणवश जब विचार श्रृंखला टूटती है तो एहसास होता है, कि हमारी आंखों से अश्रु ढुलक कर जमीन पर आपके नाम को अंकित कर चुके हैं।

प्रतिपल हम सभी के हृदय में यही अभिलाषा रहती है, कि आप आयें और आप के दर्शन कर हम अपनी आंखों को, अपने हृदय को तृप्त कर सकें। आप आयें और आपके श्री चरण जहां पड़ें, वहां की रज को अपने मस्तक से लगा कर अपने सौभाग्य की वृद्धि कर सकें। आखिर कब हमें यह सौभाग्य प्राप्त होगा? कब हमारे नेत्रों को तृप्ति मिलेगी? कब हमारे बंजर पड़ गये हृदय पर आपकी स्नेह वर्षा से आनन्द के पौधे लहलहा उठेंगे— आखिर कब तक़ विरह अग्नि में हमें तपना पड़ेगा?

आप ही ने तो इस ठूंठ सिद्धाश्रम को चैतन्यता प्रदान की थी, आप ही के प्रयास से ही तो सिद्धाश्रम में साधनारत साधक-साधिकायें, ऋषि, तपस्वी, अप्सरायें और गंधर्व— प्रत्येक ने यह सीखा कि 'जीवन' मात्र गंभीरतापूर्वक एक सहज गति से व्यतीत करने की क्रिया नहीं है, अपितु जीवन के प्रत्येक क्षण में छिपी नवीनता को अपने अन्दर आत्मसात कर प्रत्येक पल को जी लेने का नाम है . . . और इसी आनन्द भरे जीवन को प्रदान करने के लिए सिद्धाश्रम के प्रत्येक पर्वों पर अप्सराओं के नृत्य पर लगे प्रतिबंध को समाप्त कर, उन्हें नृत्य करने के लिए उत्साहित किया। आपके ही प्रयास से तो हम सब सीख सके कि सिद्धयोगा झील की तरंगों को किनारे बैठ कर निहारते रहना ही आनन्द नहीं है, अपितु सिद्धयोगा की जलतरंगों से एकाकार हो, अपने को पावनतम जल से सिंचित कर देना ही जीवन है।

आपके सिद्धाश्रम आगमन से पूर्व सिद्धाश्रम वीरान था, आपने ही तो इसके प्राण को चैतन्य किया है और आज . . . इस सिद्धाश्रम से दूर जाकर सांसारिक व्यक्तियों के मध्य एक सामान्य गृहस्थ की तरह जीवन यापन करते हुए, पूज्यपाद गुरुदेव स्वामी सच्चिदानन्द जी की आज्ञा का पूर्ण निष्ठा से पालन कर रहे हैं।

माना कि आप पूज्यपाद गुरुदेव की आज्ञा से बंधे हुए हैं, इसलिए आप अपने कार्य को पूर्ण करने से पूर्व सिद्धाश्रम में स्थायी रूप से आकर नहीं रहेंगे; किन्तु हमें तो आप अपने पास बुला ही सकते हैं। क्यों बांध रखा है हमें आपने अपनी आज्ञा से? हम चाह कर भी जिसका उल्लंघन नहीं कर सकते हैं।

गुरुदेव! सिर्फ एक बार हमें अपने साथ रहने की अनुमति प्रदान कर दीजिए,

हमारे हृदय की कातर वेदना को सुनकर भी अनसुना मत करिए। हां, अवश्य आप प्रत्येक रात्रि को कुछ पलों के लिए हमारे बीच होते हैं, हमें साधनाओं के नवीन चिंतन से अवगत कराते हैं, किन्तु जब तक हम एहसास करें कि आपके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, तब तक आप पुनः अपने गृहस्थ आश्रम में लौट जाते हैं। आपके इस क्षणिक आवागमन से हम सभी की प्यासी आत्मा और भी अतृप्त हो जाती है और आपके साथ रहने की हमारी इच्छा ठीक उसी प्रकार बलवती हो उठती है, जैसे किसी प्यासे व्यक्ति को पानी का एक घूंट पिला दिया जाय, तो उसकी प्यास और अधिक बढ़ जाती है।

आपके जाने के बाद हम सभी उस राह को निहारते रह जाते हैं . . . शायद आप अभी लौट आयेंगे। आखिर कब वह समय आयेगा जब आप पहले की भांति हमारे बीच स्थायी रूप से रह सकेंगे? आखिर कब हम प्रतिपल आपकी मधुरिम वाणी का पूर्ण तन्मयता के साथ श्रवण कर सकेंगे? कब आपकी दिव्य लीलाओं का प्रतिक्षण अवलोकन कर सकेंगे?

अपने हृदय को समझाते-समझाते अब मैं थक चुका हूं। अब इस हृदय की पीड़ा को सहन करने का सामर्थ्य मुझमें समाप्त हो गया है। हर क्षण यह हूक सी उठती है, कि दौड़ कर आऊं और आप के चरणों से लिपट जाऊं। मैं जानता हूं कि अवज्ञा करने पर आप क्रोधित हो जायेंगे, अत्यधिक कठोर दण्ड देंगे, लेकिन मैं किसी भी दण्ड को सहन करने के लिए तैयार हूं। मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप मुझे यह अपराध करने से रोक लें, मुझे अपनी मर्यादा में बंधा रहने दें— यह सब आपके ही हाथ में है, तभी तो प्रतिपल यही पुकार रहा हूं, पूर्ण हृदय के साथ अनुनय-विनय कर रहा हूं, कि आप यहां नहीं आ सकते तो मुझे ही कुछ दिनों के लिए अपने पास बुला लीजिये। आपसे अलग रह कर मेरे लिए जीवित रहने का कोई अभिप्राय नहीं है।

हम सभी की प्रार्थना को सुनकर जब आप मुस्करा कर मौन धारण कर लेते हैं, तो हमारे मन में यह प्रश्न बार-बार उठता है, कि आखिर उन सांसारिक गृहस्थों ने ऐसा कौन सा पुण्य किया है, जो आप इतनी वेदना, आलोचना एवं घात-प्रत्याघात सहन करके भी वहां रह रहे हैं। निश्चित रूप से बहुत सौभाग्यशाली हैं वे गृहस्थ व्यक्ति . . . जरूर हमसे कोई न्यूनता हुई होगी, जो चाहकर भी आपका साहचर्य प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं।

जब भी अवसर मिलता, मै अपनी प्रार्थना के माध्यम से अपने हृदय की दीन अवस्था को उनके सम्मुख रखता ही; किन्तु वे सदैव मेरी बात यही कह कर टाल देते, कि "अभी थोड़ा ठहरो, समय आने पर अपने आप बुला लूंगा।" बार-बार अपनी प्रार्थना के अस्वीकृत हो जाने पर भी मैंने हिम्मत नहीं हारी और समय मिलते ही अपने हृदय के उद्गार व्यक्त कर ही देता, यही सोच कर कि शायद अबकी बार मेरी प्रार्थना स्वीकार कर लेंगे।

एक दिन मेरा मन किसी कार्य में नहीं लग रहा था और अत्यधिक व्यथित हृदय से मैं सिद्धयोगा झील के सामने एक स्फटिक शिला पर जाकर बैठ गया। मन में चिन्तन गुरुदेव के प्रति चल रहा था, तभी एहसास हुआ कि एक दिव्य-तरंग मेरे मस्तिष्क को कोई संकेत प्रदान कर रही है। ध्यानस्थ होकर जब उस तरंग को मैंने आत्मसात किया, तो प्रसन्नता के अतिरेक में मैं नृत्य कर उठा; क्योंकि वह तरंग पूज्य गुरुदेव द्वारा प्रदत्त मेरे जीवन की अतिविशिष्ट सूचना थी, जिसने मेरे निष्प्राण शरीर को पुनः स्पन्दन प्रदान कर दिया। पूज्य गुरुदेव ने मुझे अपने साथ रहने के लिए पन्द्रह दिनों की आज्ञा प्रदान कर दी। कुछ समयोपरांत गुरुदेव द्वारा निर्धारित वह दिवस आ ही गया जब मैंने सिद्धाश्रम से निकल कर "दिव्याश्रम" में प्रवेश प्राप्त कर लिया।

गुरुधाम (जोधपुर) में पहुंचते ही मेरे हाथों ने स्वतः ही वहां के रज-कण को उठाकर मस्तक पर तिलक अंकित कर लिया। अत्यधिक रोमांचित एवं आनन्दातिरेक से युक्त जब मैंने गुरुदेव को साक्षात् अपने सामने उपस्थित देखा, तो उन श्रीचरणों से लिपट गया जिनमें सभी तीर्थों का वास है, मेरे अश्रु स्वतः चरण कमलों को प्रक्षालित कर रहे थे, मेरा रोम-प्रतिरोम मुखरित हो प्रणिपात कर उठा . . . मैं लाख प्रयत्न करके भी अपने हृदय के भावों को शब्दों के माध्यम से पन्नों पर उतार नहीं पा रहा हूं, क्योंकि गुरुदेव के दिव्य स्वरूप का दर्शन तो मेरे नेत्रों ने किया और उन्हें इस बात की अत्यधिक पीड़ा है, कि उनके पास वाणी नहीं है। वर्णन करने के लिए जिह्वा का उपयोग किया, पर जिह्वा के पास नेत्र नहीं हैं— कैसे व्यक्त करूं अपने मन के भावों को . . . तड़फ कर रह जा रहा हूं।

अपनी श्रीवाणी से आशीर्वाद शब्द को उच्चरित कर गुरुदेव ने मेरे पृष्ठ भाग को अपने चरण से स्पर्श किया . . . वर्षों बाद इस स्पर्श को एहसास कर मेरा मन-मस्तिष्क विचारशून्य हो गया, मैं अपलक चरणद्वय की ओर निहारता ही रह

गया– मेरी स्थिति देख गुरुदेव ने अत्यधिक वात्सल्य के साथ मुझे उठाया और मेरे सिर को सहलाते हुए मुस्करा दिए . . .

ऐसा लगा जैसे कि पल मात्र में मेरी वर्षों की पिपासा शान्त हो गयी और मैं पूर्ण आत्मतृप्ति के भाव से अभिभूत हो उठा। उन्होंने मुझे आज्ञा प्रदान की, कि मैं वहां एक सामान्य सांसारिक मनुष्य की भांति विचरण करूं और लोगों से वार्तालाप करूं।

अगले दिन उन्होंने मुझे अपने पास बुलाया और वल्कल प्रदान करते हुए कहा– "तुम अपनी पूरी मौज-मस्ती के साथ यहां रहो, किसी भी बात की तकलीफ हो तो तुरन्त कह देना, संकोच मत करना।"

अत्यधिक सहजता के साथ गुरुदेव द्वारा कहे गये ये शब्द मुझे आत्मविभोर कर ही गये, साथ ही आश्चर्यचकित भी, क्योंकि मुझे ऐसा लगा कि मैं किसी सामान्य गृहस्थ व्यक्ति से बात कर रहा हूं। मैं अपनी अल्प बुद्धि से यह अनुमान लगा रहा था, कि ऐसा उन्होंने मुझे अपनी माया के आवरण से आच्छादित करने के लिए कहा होगा; कुछ भी हो मेरे लिए तो उनके द्वारा उच्चरित प्रत्येक शब्द वेदवाणी की तरह पावन हैं।

अत्यन्त तपस्या एवं प्रतीक्षा के उपरांत प्राप्त हुए इन अनमोल दिवसों के प्रत्येक क्षणों का पूर्ण उपयोग करने का मैंने निश्चय कर लिया और मेरे निश्चय को साकार रूप प्रदान करने के लिए गुरुदेव ने मुझे अपने साथ प्रत्येक क्षण रखा। पूज्य गुरुदेव की जीवनचर्या को अत्यन्त निकटता से निहारता हुआ मैं अत्यधिक भावविह्वल हो रहा था, और साथ ही उनके द्वारा की जा रही क्रियाओं के गूढ़ रहस्यों से भरे चिन्तन को समझ कर, मैं अपने-आप को कृतार्थ अनुभव कर रहा था।

गुरुदेव का एक भी पल मैंने अकारण व्यतीत होते नहीं देखा है। हमेशा वे किसी न किसी कार्य को मूर्त रूप प्रदान करते हुए ही मुझे दृष्टिगत हुए। उनके प्रतिपल को यदि मैं लिखना चाहूं, तो भी नहीं लिख सकता, क्योंकि–

भवतां च कार्यानुगुणानुरागं,
स्नेहेन सिक्तं भवतां वदान्यं।
सुचिन्तितं सच्चरितं तथैव;
सरस्वती नैव न याति वक्तुम्।।

तव प्रसादेन अकिंचनोऽहम्,
महिमानमेनं प्रकरोमि किंचित्।
अशंसनीयः खलु मम प्रयासः;
क्षणं क्षणं ते शब्दे र्निबध्यते।।

यदि सरस्वती भी आपके कार्यों को, आपके चिन्तन को, आपके गुणों को लिखना चाहे, तो भी नहीं लिख सकती; फिर मैं अकिंचन आपकी महिमा का बखान कैसे कर सकूंगा? फिर भी मैंने एक असफल सा प्रयास करते हुए कुछ क्षणों को शब्दांकित करने का प्रयास किया है।

प्रातःकाल ब्रह्म मुहूर्त में ही गुरुदेव ध्यानावस्थित हो अपनी साधनात्मक ऊर्जा का मानसिक तरंगों के रूप में वायुमण्डल में विकिरण कर समस्त साधकों को मार्ग-दर्शन प्रदान करते हैं। उन क्षणों में कोई भी साधक यदि शुद्ध सात्विक भाव से गुरुदेव को स्मरण करता है, तो निश्चित रूप से वह गुरुदेव की चेतना-तरंगों से सम्पर्कित होता ही है और उसे अपनी समस्या का समाधान प्राप्त हो जाता है। यह क्रिया हम सभी संन्यासियों को ज्ञात है और हम प्रतिदिन उनसे मार्ग दर्शन प्राप्त करते ही हैं; किन्तु क्या गृहस्थ भी इस दिव्य क्रिया से अवगत हैं और क्या उन्होंने इस दिव्य तरंग से अपने-आप को सम्पर्कित किया है? मन में उठे इस प्रश्न को जब मैंने वहां उपस्थित कुछ व्यक्तियों से पूछा, तो उनमें से सभी का उत्तर था, कि हमें यह क्रिया ज्ञात है और हमने इसके द्वारा पूर्ण लाभ प्राप्त किया है।

यह पूछने पर कि क्या वे किसी विशेष साधना द्वारा ऐसा करते हैं, तो उन सभी ने सम्मिलित स्वर से उत्तर दिया— हां! अतिविशिष्ट, किन्तु अतिसहज क्रिया के द्वारा हम सम्पर्क स्थापित कर लेते हैं, और वह क्रिया है— "तांत्रोक्त मानसिक गुरु पूजन," जिसे सम्पन्न करने के लिए हमें किसी विशेष विधि-विधान की आवश्यकता नहीं होती।

आसनसोल (बिहार) से आये 'चटर्जी' ने बताया कि मैं बीमारी के कारण गुरुदेव के पास आ नहीं पा रहा था और लगातार मेरी बीमारी बढ़ने के कारण मुझे व्यापार में काफी नुकसान सहना पड़ रहा था, तभी मुझे इस दिव्य क्रिया का ध्यान आया और मानसिक पूजन सम्पन्न कर (बिस्तर पर लेटे हुए ही) ब्रह्म मुहूर्त में ही मैंने अपने-आप को गुरुदेव की मानसिक तरंगों के साथ जोड़ने का प्रयास किया और थोड़ी ही देर में मैं सफल हो गया। गुरुदेव के द्वारा प्राप्त संकेतों के अनुसार

मैंने मंत्र जप किया और रोग मुक्ति के साथ ही साथ पूर्ण धनोपार्जन कर अपने व्यापार में पूर्ण लाभ प्राप्त कर सका।

नित्य प्रातःकाल सात बजे से पूर्व ही लोग आकर कार्यालय के बाहर बैठ जाते, और सुबह से शाम तक अपनी बारी की प्रतीक्षा करते रहते। प्रतीक्षारत इन गृहस्थ व्यक्तियों के चेहरे पर एक भी चिंता की रेखा मैंने नहीं देखी। कितने लोगों को तो मैंने पूज्य गुरुदेव से मिलने के लिए दो-दो, तीन-तीन दिन प्रतीक्षा करते हुए भी देखा। इन लोगों में से अधिकांश व्यक्ति तो मात्र इसलिए ही आते हैं, कि वे एक बार कुछ पलों के लिए बस गुरुदेव को अत्यधिक पास से देख लें। इन गृहस्थ व्यक्तियों के धैर्य और इनके हृदय के भाव को देखकर मेरे सामने सिद्धाश्रम में प्रतीक्षारत शिष्य-शिष्याओं के अश्रुपूरित चेहरे झिलमिला उठे, वे भी गुरुदेव की एक झलक देखने के लिए कितने व्यग्र रहते हैं प्रतिपल . . . जहां वर्तमान समय में गुरुदेव कुछ पलों के लिए जाते हैं— और यहां पर जब हम सभी के प्राणाधार साकार रूप में विराजमान हैं, तो इतनी व्यग्रता का होना स्वाभाविक है।

जोधपुर का "गुरुधाम" यहां का एक-एक कण गुरुदेव की चेतना से अनुप्राणित है, तभी तो यहां आकर प्रत्येक की मन और आत्मा को पूर्ण तृप्ति प्राप्त होती है . . . और हो भी क्यों न, क्योंकि स्वयं पूज्य गुरुदेव यहां उपस्थित हैं, जो उस सिद्धाश्रम के अधिष्ठाता हैं, जहां आज भी बड़े-बड़े ऋषि— अत्रि, कणाद, वशिष्ठ, गर्ग, विश्वामित्र, कृपाचार्य व दत्तात्रेय साधनारत हैं, जहां राम, कृष्ण, महावीर आदि समस्त देवता साकार उपस्थित हैं।

देवभूमि सिद्धाश्रम में एक सामान्य गृहस्थ व्यक्ति का पहुंचना अत्यधिक कठिन है। अत्यधिक साधना सम्पन्न और वर्षों तक कठोर तपस्या करने वाले ऋषि भी वहां जाने के लिए लालायित रहते हैं, उनके जीवन का एकमात्र ध्येय होता है— "सिद्धाश्रम"। यदि उन्हें अपने उद्देश्य में सफलता मिल जाती है और वे सिद्धाश्रम में प्रवेश प्राप्त कर लेते हैं, फिर भी कोई आवश्यक नहीं कि पूज्य गुरुदेव स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी का शिष्यत्व उन्हें प्राप्त हो सकेगा, क्योंकि कई-कई जन्मों का पुण्योदय होता है तब उन्हें गुरुदेव का शिष्यत्व और आशीर्वाद प्राप्त होता है। सिद्धाश्रम में प्रवेश प्राप्त करने के लिए अत्यन्त कठोरतम परीक्षाएं देनी पड़ती हैं और अपने-आप को तिल-तिल कर जलाना पड़ता है।

साधारण मनुष्यों के वश की बात नहीं है, कि वे वहां पहुंच सकें, क्योंकि

उनके पास इतना समय, इतना धैर्य नहीं है कि वे उच्चकोटि की अत्यन्त कठोर साधनाओं को सम्पन्न कर सकें। अतः गृहस्थ व्यक्तियों की समस्याओं को देखकर ही गुरुदेव ने निर्णय लिया— "इन लोगों के लिए एक ऐसे "दिव्याश्रम" की रचना यहां पर ही कर दूं, जिस आश्रम में ये सभी सहजता से प्रवेश प्राप्त कर सकें, जिस आश्रम में प्रवेश करते ही व्यक्ति को मानसिक शांति का बोध हो और साधना के प्रथम स्तर पर ही अर्थात् अत्यन्त सहज साधनाओं को सम्पन्न करने मात्र से ही इनको सिद्धाश्रम के अलौकिक दृश्य दिख सकें। जिस आश्रम के प्रांगण में साधना सम्पन्न कर व्यक्ति अपनी परेशानियों से मुक्त हो सके।"

गुरुदेव ने समाज के हितार्थ ही अपने चिन्तनों को मूर्त रूप प्रदान किया और हमारे समक्ष . . . सभी गृहस्थ व्यक्तियों के समक्ष साकार है सिद्धाश्रम का सर्वथा नूतन स्वरूप "गुरुधाम" जोधपुर। गुरुधाम के प्रांगण में प्रवेश कर व्यक्ति को ऐसा एहसास होता है, जैसे कि उसने सिद्धाश्रम में प्रवेश प्राप्त कर लिया है। यदि व्यक्ति का चिन्तन थोड़ा भी आध्यात्मिक प्रवृत्तियों से प्रेरित होता है, यदि उसके अन्तर्मन में साधना की लौ आलोकित है, तो उसे सिद्धाश्रम की ही भांति यहां भी विचरण करते हुए देवी-देवताओं के दर्शन सुलभ होते ही हैं . . . और देवी-देवता वहां स्वयं उपस्थित होते ही हैं, जहां पूज्यपाद गुरुदेव जैसी दिव्यात्मा स्वयं विराजमान हो, क्योंकि देवता भी दिव्य-भूमि को नमन करने के लिए व्यग्र रहते ही हैं . . .

गुरुधाम में समय-समय पर आयोजित होने वाले यज्ञ-अनुष्ठान व साधना शिविरों के कारण पूरे आश्रम का कण-कण पूर्ण दिव्यता व तेजस्विता युक्त हो गया है। यहां की वायु, रज और जल सभी अत्यन्त पावन और अमृत तुल्य बन गए हैं। यहां आयोजित होने वाले यज्ञ के समय जब पूज्य गुरुदेव देवी-देवताओं को आवाहित कर हविष्य प्रदान करते हैं, तो वे स्वयं उपस्थित होकर अपने अंश को ग्रहण करते ही हैं। ऐसा तो मैंने अनुभव किया ही है, साथ ही कुछ गृहस्थ बन्धुओं से पूछा, तो उन्होंने भी बताया कि ऐसी अनुभूति हमें भी हुई है। कुछ लोगों नें तो अपने कैमरे से निकाले गए चित्रों को भी दिखाया और बताया कि ये चित्र हमने उस समय उतारे हैं, जिस समय गुरुदेव किसी विशिष्ट दैवी शक्ति का आवाहन करते हैं . . . और मैंने देखा कि उन चित्रों में से एक में लक्ष्मी का चित्र, दूसरे में दुर्गा का तो तीसरे में देवर्षि का चित्र अंकित है।

एक साधक ने बताया कि गुरु पूर्णिमा के अवसर पर पूर्णाहुति यज्ञ सम्पन्न

हो रहा था, उसी समय दिल्ली से आये एक दम्पत्ति ने अपने अबोध शिशु को गुरुदेव के चरणों में रखते हुए प्रार्थना की— "या तो आप इसे बचा लें या तो इसका जीवन समाप्त कर दें। इस अबोध का दुःख अब हमसे सहन नहीं होता, क्योंकि यह जब से पैदा हुआ है, तब से आज सत्रह माह हो गए, इसकी नाभि से पस आता है और कोई भी इलाज कारगर नहीं हुआ, अब आप की चरण में यह पड़ा हुआ है, जो आप की इच्छा हो, वैसा करिये।"

गुरुदेव ने बच्चे की मां से कहा— "यज्ञ कुण्ड की भस्म इस बालक की नाभि पर लगा दो, यह ठीक हो जायेगा।"

मां ने आज्ञानुसार भस्म बालक की नाभि पर लगा दिया और आज दस-बारह साल बाद भी वह बालक पूर्णतः स्वस्थ है।

महाराष्ट्र से आयी एक साधिका को मैंने देखा, कि वह एक बहुत सुन्दर सी थैली में आश्रम की रेत को उठा कर रख रही है, मुझे आश्चर्य हुआ कि वह ऐसा क्यों कर रही है? मैं अपनी उत्सुकता को रोक नहीं पाया और उससे जा कर पूछ बैठा, तो पता चला कि वह साधिका एम.बी.बी.एस. डॉक्टर है और वह आश्रम की रज इसलिए एकत्र कर रही है, क्योंकि जब उसकी कोई दवा लाभप्रद सिद्ध नहीं होती, तो वह इस रज के माध्यम से उस रोगी का इलाज करती है और पूर्ण सफलता प्राप्त हो जाती है।

गुरुधाम में निर्मित साधना कक्ष में साधनारत कुछ साधकों से भी मैंने बातचीत की; पहले तो वे कुछ भी बताने से इंकार करते रहे, लेकिन कुछ दिनों के पश्चात् जब मैं उनसे काफी घुल-मिल गया, तो उन्होंने अपने-अपने अनुभव बताये।

पश्चिम बंगाल के साधक ने आपबीती सुनाते हुए कहा— "मैंने गुरुदेव की पुस्तक लक्ष्मी साधना पढ़कर साधना प्रारम्भ की, क्योंकि मेरे ऊपर एक लाख रुपये का कर्ज चढ़ गया था। अतः अन्य कोई उपाय न होने के कारण मैंने लक्ष्मी साधना सम्पन्न करने का निश्चय किया; शुरू में तो लगा कि साधना फलीभूत हो रही है, किन्तु दो-चार दिन बाद कोई परिणाम प्राप्त नहीं हुआ। मेरे मन में विचार आया कि शायद मेरी किसी त्रुटि के कारण ऐसा हो रहा होगा, मैंने सात बार साधना को अपनी पूर्ण सतर्कता के साथ सम्पन्न किया, किन्तु असफलता ही हाथ लगी . . . साधना पर से मेरा विश्वास उठने लगा और ऐसा लगने लगा कि साधना करना केवल मात्र समय और धन का अपव्यय है।"

मेरे विचारों को सुनकर मेरी पत्नी ने कहा— "स्वतः किसी निर्णय पर पहुंचने की अपेक्षा आप एक बार पूज्य श्रीमाली जी से मिल तो लीजिए।" पत्नी का परामर्श उचित लगा और मैं जोधपुर आ गया।

जब मैं आश्रम के प्रांगण में पहुंचा तो, कुछ ही क्षणों के पश्चात् मुझे ऐसा अनुभव हुआ जैसे मेरे समस्त मानसिक तनाव शनैः-शनैः समाप्त होते जा रहे हैं; निश्चित रूप से यह यहां कि पवित्र वायु का प्रभाव था और जब मैं पूज्य गुरु जी से मिला, तो उन्होंने मुझे सांत्वना प्रदान करते हुए आश्रम में ही रह कर साधना करने का आज्ञा दी। उनकी आज्ञानुसार मैंने साधना प्रारम्भ की और तीन-चार दिन बाद ही घर से फ़ोन आ गया, कि काफी परिस्थितियां अनुकूल होती जा रही हैं और कई सालों पूर्व अनेक लोगों के पास फंसा हुआ पैसा (जिन्हें मैंने उन्हें मदद के लिए कभी दिया था) वापिस मिल गया है और दस दिन बीतते-बीतते अस्सी-नब्बे हजार रुपयों का प्रंबन्ध हो गया। मुझे विश्वास है कि अवश्य ही मेरी आर्थिक स्थिति सुधर जायेगी।

वर्तमान समय में वह एक धनपति के रूप में जीवन व्यतीत कर रहा है। उसका यह मानना है, कि जो साधना कहीं भी सम्पन्न नहीं हो रही हो और बार-बार असफलता मिल रही हो, उस साधना को यदि आश्रम में रह कर, साधना कक्ष में बैठ कर सम्पन्न किया जाय, तो निश्चित सफलता प्राप्त होती है; क्योंकि इस साधना कक्ष का निर्माण विशेष विधानों के अनुसार किया गया है और वर्षों से निरन्तर होने वाले जप व अनुष्ठानों के कारण यह साधना कक्ष अत्यन्त प्राणश्चेतना युक्त हो गया है, जिसके फलस्वरूप व्यक्ति को बैठते ही कुछ क्षणों के लिए निर्विकल्प ध्यान की स्थिति प्राप्त हो जाती है।

एक साधक (जो कि उत्तर-प्रदेश के एक ग्रामीण क्षेत्र से था) ने बताया— "मैं अपने पूर्वजन्म को देखने की इच्छा लेकर यहां आया था और आज तीसरे दिन मुझे मंत्र जप के अन्तर्गत ही अपने पूर्व जन्म के दृश्य दिखने लगे।" आगे पूछने पर उसने बताया कि मैं नित्य एक सौ एक माला गुरु मंत्र का जप करता हूं। उसने कहा— "भइया! इस जमाने में ही नहीं, हमारे अनुसार तो हर जमाने में गुरु मंत्र से बढ़कर और कोई दूसरा मंत्र हो ही नहीं सकता है।"

एक साधक जो सदैव मौन रहते थे, आवश्यकता पड़ने पर केवल संकेतों से ही काम लेते थे; उन्हें मैंने सिर्फ गुरुदेव से ही बात करते हुए देखा है। वे पूरी

रात्रि और दिन में मात्र दो-तीन घण्टों के लिए ही अपने आसन से उठते थे। जब तक मैं वहां रहा, तब तक मैंने उन्हें नींद लेते हुए नहीं देखा। उनसे बात करने की अपनी इच्छा को मैं दबा नहीं सका और अपने प्रश्नों को लेकर उनके पास पहुंच गया, किन्तु गुजरात के उस साधक ने अपना मौन नहीं तोड़ा। जब मेरा कोई भी प्रयास सफल नहीं हुआ, तो मैंने गुरुदेव से उसके बारे में पूछा।

गुरुदेव ने उस साधक को बुलाकर कहा– "मैं तुम्हें आज्ञा देता हूं कि ये जो भी प्रश्न पूछें, तुम उसका उत्तर अवश्य दे देना।"

गुरुदेव की आज्ञा से उन्होंने अपना मौन तोड़ा और बताया कि मैं गुजरात का रहने वाला हूं। यहां आने से पहले मैं एक प्राइवेट फर्म में इंजीनियर था। मेरे घर में मां, पिता, पत्नी, बच्चे सभी हैं और मैं भौतिक रूप से पूर्णतः सम्पन्न हूं। सांसारिक सुख-सुविधा के सभी साधना उपलब्ध हैं, फिर भी मेरे मन में एक तड़फ, एक कशिश सदैव बनी रहती जो किसी भी तरह से समाप्त नहीं हो रही थी। उसी समय गुरुदेव ने गुजरात में एक शिविर का आयोजन किया, यद्यपि मैं ईश्वर को तो मानता था, किन्तु पूजा-पाठ, मंत्र जप इत्यादि में विश्वास नहीं करता था। फिर भी अपने मित्र के कहने पर शिविर में गया। उस समय गुरुदेव प्रवचन दे रहे थे, उनके शब्दों को मैं आत्म-विस्मृत हो अन्दर उतारता रहा . . . और मुझे ऐसा लगने लगा जैसे मेरे हृदय की बेचैनी कम हो रही है– ऐसा एहसास होते ही मैं अभिभूत हो उठा, अगले दिन गुरुदेव से मिलने उनके विश्राम-स्थल पर पहुंच गया और अपने मन की सारी बातें कह डालीं।"

गुरुदेव ने कहा– "यहां तो मैं आराम से तुम से बात नहीं कर सकता, तुम जोधपुर आ जाओ।"

कुछ माह के पश्चात् मैं जोधपुर आ गया और उस दिन के बाद से मैं आज तक लौट कर वापस नहीं गया।

मैंने उनसे पूछा– "आप यहां कौन सी साधना कर रहे हैं और आपको क्या अनुभव होता है?"

– मैं यहां गुरु साधना कर रहा हूं . . . और अनुभव . . . कौन-कौन सा अनुभव बताऊं, मेरा हर पल अनुभवों से भरा हुआ है।"

– "फिर भी मेरी जिज्ञासा के समाधान के लिए एक-दो अनुभव बता दीजिए।"

— "अच्छा!

जिस दिन मैं यहां पहुंचा, उसी दिन गुरुदेव से मेरी मुलाकात हो गयी, उन्होंने कहा— 'तुम आज विश्राम कर लो, कल मैं तुमसे बात करूंगा और तुम्हारे हृदय में घुमड़ती जिज्ञासाओं का समाधान भी बताऊंगा।' मैंने बहुत ही प्रफुल्लित मन से कार्यालय में आकर अपना नाम पता लिखाया। एक कार्यकर्ता ने मुझे सामान रखने का स्थान बता दिया। मैंने सारी रात जागकर बिता दी और यही सोचता रहा कि कल का दिवस मेरे जीवन के लिए अत्यधिक भाग्य प्रदायक होगा, क्योंकि अपने प्रभुश्री के साथ सर्वथा अकेला रहूंगा। उनके श्रीचरणों का सान्निध्य प्राप्त होगा, उनके श्रीमुख से निःसृत वाणी सिर्फ और सिर्फ मेरे लिए होगी, उनके अधराम्बुज पर उभरती स्मित हास्य के माधुर्यामृत का मैं अपने नेत्रों से पान कर सकूंगा; हे ईश्वर! मेरी यही प्रार्थना है, कि उस समय तू काल की गति को रोक दे, जिससे मेरे जीवन के सौभाग्य भरे स्वर्णिम क्षण न बीतें, भले ही सदियां गुजर जायें . . . हे परम पिता! मेरी विनती सुन लो, फिर कभी कुछ नहीं मांगूगा।

— सारी रात मैं यही प्रार्थना करता रहा, और आदित्य ने अपनी प्रथम किरण से जब धरा का स्पर्श कर उसे अपने आगमन का आभास कराया, मैं स्नान कर उस समय से ही अपने प्राणेश्वर के दर्शन के लिए ऑफिस के सामने अपलक दृष्टि से दरवाजे को निहारता खड़ा रहा, निर्निमेष देखता जा रहा था मैं, जिससे एक भी पल चूक न जाऊं, कहीं ऐसा न हो कि गुरुदेव सामने आयें और मेरी पलकें झपक जायें। वहां खड़े-खड़े दो घण्टे बीत गये, लेकिन ऐसा लग रहा था जैसे मैं वर्षों से खड़ा हूं, सच कहा है— प्रतीक्षा की घड़ियां बड़ी मुश्किल से बीतती हैं. . . और तभी ऑफिस का दरवाजा खुला और श्वेताम्बरधारी विराट स्वरूप श्री गुरुदेव ने दर्शन दिया, उनकी भुवन मोहिनी छवि का दर्शन कर मैं आकण्ठ तृप्त हो गया. . .

तभी उन्होंने नेत्रों के इंगित से मुझे अपने पास बुलाया, मैं चित्रलिखित सा उनके पास जा पहुंचा और साष्टांग दण्डवत् कर उनके चरणों से लिपट गया। स्वतः मेरे आंखों से अश्रु निकल कर उनके चरण पखारने लगे, बहुत कठिनाई हो रही थी मुझे अपने अश्रुओं को रोकने में, क्योंकि ये मेरी बात मान ही नहीं रहे थे. . .

इतना कहते-कहते उनका चेहरा आंसुओं से तरबतर हो गया और मैंने

प्रेमी साधक के भावनाओं को मन ही मन प्रणिपात कर लिया, कितना अगाध प्रेम है इसका गुरुदेव के चरणों के प्रति!

— गुरुदेव ने मुझे साधना के कुछ सूत्र समझाये और साधना कक्ष में जाने की आज्ञा दी। मैं साधना कक्ष में आकर बैठ गया। थोड़ी देर के बांद गुरुदेव कक्ष में पधारे, उन्होंने विधिवत् संस्कारित कर मुझे दीक्षा प्रदान की और गुरु मंत्र "ॐ परम तत्त्वाय नारायणाय गुरुभ्यो नमः" का जप करने की आज्ञा दी। तब से लेकर आज तक मैं गुरु मंत्र का ही जंप कर रहा हूं। बीच-बीच में गुरुदेव मुझसे कहते हैं कि किसी महाविद्या की साधना कर ले, या अन्य कोई भी ज्ञान सीख ले; लेकिन मैं मौन रहता हूं, क्योंकि उनकी बात से इंकार करने का साहस मुझमें नहीं है और न तो मैं गुरु मंत्र को छोड़कर किसी अन्य मंत्र का जप करना चाहता हूं।

— "ऐसा क्यों करते हैं आप? महाविद्या साधना! वह भी गुरुदेव द्वारा प्रदत्त!! गुरुदेव की बात मान लें।"

लेकिन उस साधक ने कहा— नहीं, मेरा अन्तर्मन कभी नहीं मानेगा, गुरुदेव ने आज्ञा दी है— 'आपको बताऊं,' इसलिए आज यह रहस्य खोल रहा हूं, कि गुरु मंत्र जप करते हुए सभी महाविद्याओं का मैं दर्शन प्राप्त कर चुका हूं, मेरे जीवन का सूत्र है— "जो तू सेवे मूल को फूले-फले अघाय" अरे! जब मुझे गुरु मंत्र रूपी अमोलक रत्न प्राप्त है, तो मैं कंकर-पत्थर क्यों बटोरूं।

. . .धन्य हैं ये गृहस्थ साधक, जो अपने गृहस्थ धर्म का निर्वाह भी करते रहते हैं और गुरुदेव द्वारा बतायी गयी साधनाओं को भी करते हैं। वास्तव में ये साधक हम सभी के लिए अनुकरणीय हैं। दो-तीन ही नहीं, मैं जिस किसी से मिला उसके अनुभवों से, उसके विचारों से प्रभावित हुए बिनां नहीं रह सका। शीघ्र ही मैं सभी गृहस्थ साधकों के अनुभवों का संकलन भी तैयार करूंगा, जो हम सिद्धाश्रम के साधकों द्वारा गृहस्थ साधकों को प्रेमांजलि होगी।

मैंने एक प्रश्न और भी अपने सम्पर्क में आये लगभग सभी गृहस्थ साधकों से पूछा— "क्या कभी आपके जीवन में ऐसा क्षण भी आया है, जब आप गुरुदेव के प्रति अपने विश्वास से विचलित हो गये हों?"

कुछ लोग तो चुप रह गये और कुछ कोई न कोई बहाना बनाकर मेरे पास से हट गये; उनके इस व्यवहार से मैं समझ गया कि, ये अपनी कमियों को व्यक्त करने से डरते हैं, किन्तु कुछ लोगों ने उत्तर दिया— "हां, कभी-कभी हमारे मन में

यह भावना आती है, कि ये भी तो हमारे जैसे हाड़-मांस से बने व्यक्ति हैं, यदि भगवान हैं या सिद्धयोगी हैं, तो इन्हें बीमार नहीं होना चाहिए, घर की उलझनों में नहीं उलझना चाहिए, और तो और इनके द्वारा कही हुई बात जब कभी सत्यापित होने नहीं दिखती है, तो मन अवश्य विचलित हो जाता है, कभी-कभी स्वयं संभल जाता है, तो कभी-कभी मुश्किल से।

बातचीत के क्रम में कुछ ऐसे लोगों के बारे में भी जानकारी मिली जो कि एक दो-साधना सम्पन्न कर खुद को महान ज्ञानी, महान सन्त और न जाने क्या-क्या कहलाने लगते हैं। कुछ ऐसे लोग भी हैं, जो कुछ नहीं कर पाते तो आलोचना तो कर ही सकते हैं— और ऐसा कृत्य कर वे अपने कुकर्म पर प्रसन्न होते रहते हैं।

ऐसे आलोचकों को भी सहृद गुरुदेव निरन्तर क्षमाप्रदान करते रहते हैं, क्योंकि उन्होंने सिद्धाश्रम से गृहस्थाश्रम में लौटते हुए यह संकल्प लिया था, कि अपनी सिद्धियों का व्यक्तिगत कार्य या परेशानियों को दूर करने के लिए उपयोग नहीं करूंगा।

मुझे दया आती है ऐसे लोगों पर, जो कि एक दिव्य पुरुष के सान्निध्य से स्वयं को वंचित किये हुए हैं, यद्यपि उनका हृदय उन्हें गुरुदेव की तेजस्विता को भासित कराता ही होगा, लेकिन वे बेचारे लोग करें भी तो क्या, क्योंकि उन्हें बुद्धि का अजीर्ण जो हो गया है।

बुद्धि के माध्यम से किसी की साधनात्मक स्थिति को नहीं जाना जा सकता है; उनकी साधनात्मक उपलब्धियों को जानने के लिए आवश्यक है, कि बुद्धि को एक किनारे रख कर श्रद्धा के माध्यम से ऐसे दिव्य व्यक्ति का साहचर्य प्राप्त करें और तब वे निर्णय लें, कि उनकी बुद्धि का तर्क सही है या उनकी आत्मा का आभास।

दुःख होता है ऐसे लोगों के जीवन पर, जो उनके साहचर्य का लाभ नहीं ले पा रहे हैं, हजारों-हजारों वर्षों बाद कोई व्यक्तित्व सिद्धाश्रम से सामान्य गृहस्थों के मध्य आता है, और लोग तो आते रहते हैं, किन्तु परमवन्दनीय पूज्य श्री निखिलेश्वरानन्द जी का आगमन तो अत्यधिक कठिन होता है, क्योंकि वे सिद्धाश्रम के अधिष्ठाता परमपूज्य सच्चिदानन्द जी के आत्मांश जो हैं। हमें आश्चर्य होता है, कि कैसे उन्होंने अपनी आत्मा को इन छुद्र मानसिकता से ओत-प्रोत लोगों के बीच में भेज दिया है, बहुत कष्ट उठाना पड़ता है हम सब के जीवनाधार को।

और तो और जब मैं लोगों को इनके पास आकर छोटी-छोटी भौतिक

वस्तुओं की प्राप्ति की कामना करते देखता हूं, तो अत्यधिक विषादग्रस्त हो उठता हूं।

— 'अरे!'

— 'तुम्हें धन मांगना है, तो गुरुदेव के प्रेम का धन मांगो।'

— 'तुम्हें प्रेम चाहिए, तो गुरुदेव के श्रीचरणों से प्रीत मांगो।'

— 'तुम दे तो सकते नहीं हो कुछ भी, सिर्फ लेने की कामना रखते हो, लेकिन दुःख तो इस बात का है, कि तुमको लेने की क्रिया भी नहीं आती है। अभी भी समय है, अपने-आप को धोखा मत दो; अपनी आत्मा की पुकार सुन लो और मांग लो गुरु चरणों में प्रीत।'

क्षमा करना मुझे आप सभी। ऐसा नहीं कहना चाहिए था मुझे, लेकिन क्या करूं, मन में छाया विषाद आक्रोश बन कर व्यक्त हो गया, क्योंकि सिद्धाश्रम में तो हमने गुरुदेव के भ्रू-संकेत पर ही सारा कार्य सम्पादित होते देखा है, एक पल भी अगर हमें इनके पास बैठने का अवसर मिलता है, तो हम अपने जीवन को धन्य समझ बैठते हैं. . . और आप लोग तो अत्यधिक निकटता प्राप्त किये हुए हैं, फिर भी आप लोगों के मन में इतना छल, ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार और क्रोध भरा हुआ है!

गुरुदेव तो दोनों हाथों से अपने ज्ञान को, अपनी चेतना को लुटा रहे हैं, लेकिन उस दौलत को अपने पास संग्रहित रखने के लिए प्रयास तो आप लोगों को ही करना पड़ेगा। जो साधनाएं हम वर्षों की तपस्या और प्रार्थना करने के पश्चात् प्राप्त कर पाते हैं, उन साधनाओं का गूढ़ रहस्य गुरुदेव आपके सामने सहजता से उजागर कर देते हैं।

— यदि तुम कुछ प्राप्त नहीं कर सके, तो इसका तात्पर्य यह तो नहीं कि देने वाले में कमी है; देने वाले ने तो तुम्हें आवश्यकता से अधिक दिया है, लेकिन तुम लोगों में उसे लेने की क्षमता ही नहीं है।

— सोचता हूं क्यों दोषी कहूं तुम लोगों को, क्योंकि किसी को यदि हीरे की परख नहीं है, तो वह कांच का टुकड़ा समझ उसे एक ओर रख ही देगा।

— ऐसी बात नहीं है, कि तुम्हारे पास परखने की दृष्टि नहीं है, दृष्टि तो है, लेकिन तुम उसका उपयोग नहीं कर रहे हो; तुम्हारी आत्मा गुरुदेव की आत्मा

का ही अंश है, तुम उन्हीं के रक्त सम्बन्धी हो, तभी तो उन्होंने तुम्हें अपना नाम दिया है और अपना पुत्र कहकर सम्बोधित किया है।

मेरा पूरा दिन बहुत ही व्यथित भाव से बीता, सायंकाल गुरुदेव ने पूछा, तो मैंने अपने मन की व्यथा व्यक्त कर दी। मेरी बात सुन कर गुरुदेव बहुत गम्भीर हो गये. . . और उनके मौन ने वह सब कुछ व्यक्त कर दिया जो उनके हृदय की पीड़ा है। मैंने गुरुदेव से प्रार्थना की, कि आप ने यदि इन गृहस्थों पर माया का आवरण डाल रखा है, तो उसे हटा दें, भौतिकता से विमोहित गृहस्थों को सद्ज्ञान प्रदान कर,. इन्हें इनके जीवन के उद्गम से मिला दें।

मेरी प्रार्थना सुन गुरुदेव ने कहा– "मैंने अपनी तरफ से कोई कोर-कसर नहीं छोड़ रखी है, हर सम्भव-असम्भव प्रयास को कर रहा हूं, जिससे ये जन्म-मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो सकें, ये सभी गृहस्थ साधक मुझे अत्यधिक प्रिय हैं; मैं इनकी विवशताओं को समझता हूं, इसलिए तो "सिद्धाश्रम" तुल्य ही "गुरुधाम" के रूप में दिव्याश्रम की स्थापना कर रहा हूं, जहां आकर ये साधना कर सकें और वह सामर्थ्य प्राप्त कर सकें जिससे मूल सिद्धाश्रम में प्रवेश कर सकें।"

मैं अपना व्यक्तिगत अनुभव आप लोगों के समक्ष कुछ शब्दों में व्यक्त कर रहा हूं– "उत्तरंग हिमाच्छादित उपत्यका के मध्य में स्थित सिद्धाश्रम और गुरुधाम दोनों के वातावरण, वायु, रज़ और जल में पूर्ण साम्य है– ऐसा मेरा अनुभव है; क्योंकि सही अर्थों में सिद्धाश्रम तो वहीं है, जहां पूज्यश्री विराजमान हैं, क्योंकि सिद्धाश्रम की यह मूलभूत विशेषता है कि वह सदा और सर्वत्र जहां ऐसी दिव्य विभूति होती है, वहां अपने मौलिक रूप से प्रकट रहता ही है और यही कारण है, कि गुरुधाम जागतिक दृष्टि से लौकिक प्रतीत होते हुए भी मूलतः अत्यन्त अलौकिक है, क्योंकि सिद्ध पुरुष की अभ्यर्थना के लिए तो स्वयं देवी-देवता पंक्तिबद्ध खड़े रहते हैं और उनके इंगित मात्र से ही सभी कार्य सम्पादित कर देते हैं।"

– धन्य है यह "गुरुधाम" जहां पूज्य गुरुदेव विराजमान हैं।

– वन्दनीय है यह 'माटी' जो गुरुदेव के चरणों से संस्पर्शित है।

– धन्य हैं 'आप सभी गृहस्थ' जो आपके पास सशरीर पूज्य श्री निखिलेश्वरानन्द जी वर्तमान समय में "डा० नारायणदत्त श्रीमाली जी" के रूप में विराजमान हैं।

पन्द्रह दिन पूरे हो गये, लेकिन लौटने की इच्छा ही नहीं हो रही है, क्योंकि वहां जाकर पुनः मुझे गुरुदेव से अलग होने की वेदना सहन करनी पड़ेगी। समझ नहीं पा रहा हूं, कि आज कैसे गुरुदेव के सम्मुख उपस्थित होऊं! अलग होने के दर्द से हृदय विदीर्ण हुआ जा रहा है. . . और तभी गुरुदेव ने मुझे बुला लिया। उनके पास पहुंचकर मैंने दण्डवत् वन्दन किया और अपने अश्रु अर्घ्य से श्रीचरणद्वय को प्रक्षालित करने लगा. . . बहुत कठिनाई से गुरुदेव ने मुझे उठाया और अपना वरद्हस्त मेरे सिर पर रखकर बोले– "मेरी आज्ञा है, तुम सिद्धाश्रम वापस लौट जाओ, वहां जाकर अपनी साधनाओं को पूर्ण करो।"

– "मैं कुछ नहीं कह सका, लेकिन टूटे-फूटे शब्दों में उनसे सिद्धाश्रम शीघ्र आने की प्रार्थना की।"

गुरुदेव के श्रीचरणों में बार-बार नमन करता हुआ, मैं बाहर आया और गुरुधाम की रज को अपने मस्तक से लगा कर बोल पड़ा– "धन्य है यह गुरुधाम, यह तो सिद्धाश्रम से भी महान है।"





सर्व सिद्धि प्रदाय . . .

श्री गुरुदेव निखिलेश्वरानन्द प्रयोग

इस बात का मुझे गर्व है, कि मैं बाल्यावस्था से ही संन्यासी हुआ. . . और अब जीवन के अस्सी वर्षों से भी ज्यादा आयु प्राप्त करने के बाद भी मुझे इस बात का संतोष और गर्व है, कि मैंने अपने जीवन में जो साधनाएं चाही थीं, वे प्राप्त हुईं, जिन सिद्धियों को मैं वरण करना चाहता था, उन सिद्धियों को मैंने हस्तगत किया और साधना की उन ऊंचाइयों को स्पर्श किया. . . जो मेरे जीवन की धरोहर हैं।

मुझे अपने जीवन का सबसे बड़ा सौभाग्य तब प्राप्त हुआ, जब मुझे संन्यासी जीवन के प्रारम्भ में अद्वितीय योगीश्वर श्री निखिलेश्वरानन्द जी जैसे महायोगी का सान्निध्य प्राप्त हुआ। मैं उनकी कठिन एवं कठोर परीक्षा में सफल हुआ और उनका प्रिय शिष्य कहलाने का गौरव प्राप्त कर सका।

मैं ही नहीं, अपितु हजारों-हजारों संन्यासी उन्हें अपना आराध्य मानते हैं, हजारों-हजारों संन्यासी आज भी उनके एक संकेत पर अपने-आप को फना करने के लिए तैयार हैं, उनकी एक झलक देखने के लिए, दो-चार क्षण उनके साथ व्यतीत करने के लिए अपना संचित पुण्य

भी लुटाने के लिए तैयार हैं। ऐसे ही योगीराज के जिस दिन मैंने दर्शन किये थे, वह दिन मेरे जीवन का सौभाग्यदायक दिन था. . . और जिस दिन मैंने उन्हें गुरु-रूप में प्राप्त किया, वह मेरे पिछले तीस जन्मों का सबसे श्रेष्ठ, महत्त्वपूर्ण व दुर्लभ क्षण था। उनके सान्निध्य में मैंने सिद्धियों को प्राप्त किया, जो कि वास्तव में ही अगम्य, अगोचर और अद्वितीय हैं।

एक बार शिवरात्रि के पर्व पर उनका आध्यात्मिक संकेत प्राप्त होने पर मैं उनके गृहस्थ स्वरूप को साक्षात् देखने का सौभाग्य प्राप्त कर सका, वास्तव में ही वे अपने-आप में अद्वितीय हैं, उनकी किसी से तुलना ही नहीं की जा सकती। यदि वे संन्यास जीवन में रहे हैं, तो संन्यासी के आदर्शों और तत्त्वों की कसौटी पर पूर्णतः खरे उतर कर शंकराचार्य की उस परम्परा को पुनः जीवित कर दिया, कि संन्यास जीवन किस प्रकार और किन आदर्शों के साथ व्यतीत किया जा सकता है।

— और अब, जब कि मैं उन्हें गृहस्थ जीवन में देख रहा हूं, तो अनुभव कर रहा हूं, कि वे गृहस्थ जीवन के तत्त्वों को पूर्णतः आत्मसात् किये चार आश्रमों में से विशिष्ट गृहस्थ आश्रम को भी पूर्णता के साथ सम्पन्न कर रहे हैं। इस गृहस्थ जीवन की समस्याओं, बाधाओं, अड़चनों और कठिनाइयों को भी वे सामान्य मानव की तरह ले रहे हैं, सामान्य मानव की तरह ही उनका समाधान ढूंढते हैं, चुनौतियों का सामना करते हैं और सामान्य मानव की तरह ही संघर्ष कर उसमें सफलता प्राप्त कर रहे हैं।

मैं समझता हूं कि यह सब वे इसीलिए कर रहे हैं, क्योंकि वे अपने शिष्यों को यह दिखा देना चाहते हैं, कि गृहस्थ जीवन की समस्याओं को झेलते हुए भी साधना की जा सकती है। गृहस्थ की चुनौतियों का सामना करते हुए भी पूर्णतः साधु-जीवन या वैराग्य-जीवन व्यतीत किया जा सकता है।

गृहस्थ की झंझटों का सामना करते हुए भी साधना काल में सूक्ष्म प्राणों से सर्वत्र विचरण किया जा सकता है और अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह किया जा सकता है, पूर्ण गृहस्थ जीवन का गरल पीते हुए भी मुस्कराया जा सकता है और आनन्द के साथ जीवन को पार लगाया जा सकता है. . . यह सब कुछ मैंने इस बार शिवरात्रि के अवसर पर कुछ क्षण उनके

साथ बिताने पर अनुभव किया।

वेदव्यास ने श्रीमद्भागवत में एक स्थान पर कहा है, कि भगवान् श्रीकृष्ण सोलह कला पूर्ण ब्रह्म के साक्षात् स्वरूप होते हुए भी उन्होंने देवकी के गर्भ से जन्म लिया, उन्होंने सामान्य बालक की तरह ही सांदीपन आश्रम में शिक्षा प्राप्त की, जीवन के घात-प्रतिघातों से जूझे, जीवन की समस्याओं का और चुनौतियों का सामान्य मानव की तरह मुक़ाबला किया और सामान्य मानव की तरह ही उन्होंने जीवन व्यतीत किया।

मैं इसी की पुनरावृत्ति वर्तमान जीवन में भी देख रहा हूं। नित्य आने वाली बाधाओं और चुनौतियों को हल करने में उन्होंने दुर्लभ सिद्धियों का प्रयोग गृहस्थ जीवन की समस्याओं को सुलझाने में नहीं किया, क्योंकि वे सामान्य गृहस्थ शिष्यों के बीच हैं, और अपने कार्यों से शिष्यों को दिखा देना चाहते हैं, कि एक सामान्य साधक भी सफल गृहस्थ जीवन व्यतीत करता हुआ साधना की ऊंचाइयों को प्राप्त कर सकता है, अपने जीवन की दुर्लभ साधनाओं को बचाये रख सकता है. . . और गृहस्थ जीवन में रहते हुए भी संन्यासी की तरह जीवन के क्षण व्यतीत कर सकता है।

मैं हतप्रभ हूं कि एक व्यक्ति दो सर्वथा विभिन्न जीवन जीते हुए भी प्रत्येक जीवन में सफलता प्राप्त कर सकता है, यह मैंने पहली बार ही अनुभव किया। उनका संन्यासी जीवन जहां सभी दृष्टियों से पूर्ण और तेजस्वी रहा है, तो गृहस्थ जीवन भी पूर्ण शान्त एवं आनन्दप्रद है।

— दोनों ही रूपों में पूर्णता प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है, परन्तु इन कठिनाइयों के बीच भी जो अपने-आप को निर्विकल्प रूप से बचाये रख सकते हैं, सम्भवतः वे ही पूर्ण कहलाने के अधिकारी होते हैं।

हम सभी संन्यासी शिष्यों सिद्धाश्रम के अत्यन्त तेजस्वी, "योगीराज परमहंस स्वामी महारूपा जी" से "स्वामी निखिलेश्वरानन्द साधना प्रयोग" प्राप्त किया और जिस प्रयोग को सम्पन्न कर हमने पूर्णता को प्राप्त किया; जो प्रयोग विधि विशेष रूप से स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी के लिए ही बनाई गई है, और जिसके माध्यम से साधनाओं में सफलता और सम्पूर्ण सिद्धियां प्राप्त करने में हम लोगों ने सफलता पाई है, उसी प्रयोग विधि को मैं पूज्य गुरुदेव से क्षमा, याचना करते हुए स्पष्ट कर रहा हूं—

विनियोग

ॐ अस्य श्री प्राणात्मनः निखिलेश्वरानन्द मंत्रस्य भगवान् श्री महारूपा ऋषिः, गायत्री छन्दो, निखिलेश्वरानन्द योगीश्वर्यै, क्लीं बीजम्, श्रीं शक्तिः, ऐं कीलकं, प्रणवो ॐ व्यापक मम समस्त क्लेश परिहारार्थं चतुर्वर्ग फल प्राप्तये सर्व सिद्धि सौभाग्य वृद्ध्यर्थं च मंत्र जपे विनियोगः।

ऋष्यादि न्यास

श्री महारूपा ऋषये नमः	–	शिरसि
गायत्री छन्दसे नमः	–	मुखे
निखिलेश्वरानन्द ऋषिभ्यो नमः	–	हृदि
क्लीं बीजाय नमः	–	गुह्ये
श्रीं शक्तये नमः	–	नाभौ
ऐं – कीलकाय नमः	–	पादयोः
ॐ व्यापकाय नमः	–	सर्वांगे

मम समस्त कलेश परिहारार्थं चतुर्वर्ग फल प्राप्तये सर्व सिद्धि सौभाग्य वृद्ध्यर्थं च मंत्र जपे विनियोगाय नमः – पुष्पांजलिः।

अंग न्यास

ॐ ऐं श्रीं क्लीं	हृदयाय नमः
प्राणात्मनः	शिरसे स्वाहा
"निं"	शिखायै वषट्
सर्व सिद्धि प्रदाय	कवचाय हुं
निखिलेश्वरानन्दाय	नेत्र त्रयाय वौषट्
नमः	अस्त्राय फट्

कर न्यास

ॐ ऐं श्रीं क्लीं	अंगुष्ठाभ्यां नमः
प्राणात्मनः	तर्जनीभ्यां स्वाहा
''निं''	मध्यमाभ्यां वषट्
सर्व सिद्धि प्रदाय	अनामिकाभ्यां हुं
निखिलेश्वरानन्दाय	कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्
नमः	करतल-कर पृष्ठाभ्यां फट्

मानस पूजन

१. ॐ ''लं'' पृथिव्यात्मकं गन्धं प्राणात्मनः निखिलेश्वरानन्द श्री पादुकाभ्यां नमः अनुकल्पयामि।

२. ॐ ''हं'' आकाशात्मकं पुष्पं प्राणात्मनः निखिलेश्वरानन्द श्री पादुकाभ्यां नमः अनुकल्पयामि।

३. ॐ ''यं'' वाय्वात्मकं धूपं प्राणात्मनः निखिलेश्वरानन्द श्री पादुकाभ्यां नमः अनुकल्पयामि।

४. ॐ ''रं'' वह्न्यात्मकं दीपं श्री प्राणात्मनः निखिलेश्वरानन्द श्री पादुकाभ्यां नमः अनुकल्पयामि।

५. ॐ ''वं'' अमृतात्मकं नैवेद्यं श्री प्राणात्मनः निखिलेश्वरानन्द श्री पादुकाभ्यां नमः अनुकल्पयामि।

६. ॐ ''शं'' शक्त्यात्मकं ताम्बूलं श्री प्राणात्मनः निखिलेश्वरानन्द श्री पादुकाभ्यां नमः अनुकल्पयामि।

मंत्र

ॐ ऐं श्रीं क्लीं प्राणात्मनः ''निं'' सर्व सिद्धि प्रदाय निखिलेश्वरानन्दाय नमः

(सवा लाख मंत्र जप से सिद्धि)

निखिलेश्वरानन्द पंच रत्न स्तवन

ॐ नमस्ते सते सर्व-लोकाश्रयाय,
नमस्ते चिते विश्व-रूपात्मकाय।
नमो द्वैत-तत्त्वाय मुक्ति-प्रदाय;
नमो ब्रह्मणे व्यापिने निर्गुणाय।।१।।

हे गुरुदेव! आप मेरे जीवन के आराध्य हैं, आप नित्य हैं, समस्त लोकों के आश्रय हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूं। हे योगीराज!! आप ज्ञान-स्वरूप हैं, विश्व की आत्मा स्वरूप हैं, आप अद्वैत तत्त्व प्रदायक मुक्तिदायक हैं आपको नमस्कार है, आप सर्वव्यापी, निर्गुण ब्रह्म हैं, सगुण रूप में आप हम समस्त शिष्यों के सामने उपस्थित हैं, आपको नमस्कार है।।१।।

त्वमेकं शरण्यं त्वमेकं वरेण्यं,
त्वमेकं जगत्-कारणं विश्व-रूपम्।
त्वमेकं जगत् कर्तृ-पातृ-प्रहर्तृ;
त्वमेकं परं निश्चलं निर्विकल्पम्।।२।।

आप ही हम समस्त शिष्यों के एकमात्र "शरण्य" अर्थात् आश्रय हैं, आप इस संसार में हमारे लिए अद्वितीय वरणीय हैं, आप ही समस्त सिद्धियों के एकमात्र कारण हैं, आप विश्व-रूप हैं, आप के कण्ठ में सम्पूर्ण विश्व की अवस्थिती है, जिसे हमने कई बार अनुभव किया है, आप ही समस्त सिद्धियों के, संसार के उत्पत्तिकर्ता, निर्माणकर्ता, पालनकर्ता एवं संहारकर्ता हैं, आप विविध कल्पनाओं से रहित पूर्णता-प्राप्त, षोडश कलायुक्त पूर्ण पुरुष हैं, आपको हम शिष्यों का नमस्कार है।।२।।

भयानां भयं भीषणं भीषणानां,
गतिः प्राणिनां पावनं पावनानाम्।
महोच्चैः पदानां नियन्तृ त्वमेकं;
परेषां परं रक्षकं रक्षकाणाम्।।३।।

आप भय के भी भय हैं, अर्थात् आपका नाम स्मरण करते ही भय समाप्त हो जाता है, आप विपत्तियों के लिए विपत्ति स्वरूप हैं, आपको देखते ही या आपका

नाम स्मरण करते ही हम लोगों की विपत्तियां समाप्त हो जाती हैं, हम सभी शिष्यों की आप ही एकमात्र गति हैं, आप पवित्रता के साक्षात् स्वरूप हैं, उच्च पद पर जितनी भी महाशक्तियां हैं आप उनके आधार स्वरूप हैं, आप संसार के सभी श्रेष्ठ पदार्थों से प्रेरित हैं, और रक्षकों के पूर्णरूप से रक्षक हैं, हम सब शिष्य आपको भक्ति-भाव से प्रणाम करते हैं।।३।।

परेशं प्रभो सर्व-रूपाविनाशिन्,
अनिर्देश्य सर्वेन्द्रियागम्य सत्यं।
अचिन्त्याक्षरं व्यापकाव्यक्त-तत्त्वं;
जगद्-भासकाधीश पायादपायात्।।४।।

हे तपस्वी! हे प्रभु!! समस्त शिष्यों के हृदय में विराजमान अविनाशी रूप में रहते हुए, समस्त शिष्यों का कल्याण करने वाले और समस्त प्रकार की इन्द्रियों पर पूर्णरूप से नियंत्रण करने वाले, आप पूर्णरूप से अगोचर होते हुए भी हम सब लोगों के सामने साक्षात् देह रूप में उपस्थित हैं। हे सत्य स्वरूप! हे अचिन्त्य! हे अक्षर! हे व्यापक! हे अवर्णनीय तत्त्व! हे ब्रह्म स्वरूप! हे मेरे प्राणों में निवास करने वाले! हम समस्त शिष्य आपके चरणों में हैं, आप हमें अपनी भक्ति, अपना ज्ञान और अपना स्नेह प्रदान करें, हम आपको भक्ति-भाव से प्रणाम करते हैं।।४।।

तदेकं स्मरामस्तदेकं जपामः,
तदेकं जगत् साक्षि-रूपं नमामः।
तदेकं निधानं निरालम्बमीशं;
भवाम्बोधि-पोतं शरण्यं व्रजामः।।५।।

हम और किसी इष्ट को नहीं जानते, न तो हमें मंत्र का ज्ञान है और न तंत्र का, न हमें पूजन-विधि आती है, और न साधना-रहस्य ही हमें ज्ञात हैं; हम तो केवल गुरु मंत्र का जप करने में ही समर्थ हैं, पल-पल आपके द्वारा बिखेरी हुई माया से हम कई बार भ्रमित हो जाते हैं और आपको सामान्य मानव समझने की गलती कर बैठते हैं, आपको सामान्य मानव की तरह हंसते और उदास हो कर विचरण करते हुए देखते हैं, कहते और सुनते हुए जब अनुभव करते हैं, तो हम सामान्य शिष्य भ्रम में पड़ जाते हैं और हमारा सारा ज्ञान उस एक क्षण के लिए तिरोहित हो जाता है। हम बार-बार जन्म लेते हैं, संसार के दुःखों में, संसार की समस्याओं

और गृहस्थ की परेशानियों में डूबते-उतराते हुए आपका भली प्रकार से चिन्तन नहीं कर पाते, हमें और कुछ भी नहीं आता, हम तो केवल आतुर कण्ठ से "गुरुदेव" शब्द का उच्चारण ही कर सकते हैं. . . और इसी शब्द के माध्यम से आपके द्वारा सिद्धाश्रम प्राप्त कर पूर्ण ब्रह्म में लीन हो जाना चाहते हैं, हम तो केवल इतना ही जानते हैं, कि आप ही हमारे आश्रयभूत हैं, आप ही हमारे जीवन के आधार हैं, आप ही हमारे भव सागर के जहाज स्वरूप हैं, हम तो केवल आपका ही आश्रय ग्रहण करते हैं, आपको हम सब श्रद्धायुक्त प्रणाम करते हैं।।५।।

पंच रत्नमिदं स्तोत्रं ब्रह्मणः परमात्मनः।
यः पठेत् प्रयतो भूत्वा ब्रह्म सायुज्य माप्नुयात्।।६।।

जो इस पंचरत्न स्तवन का नित्य पाठ करता है, वह निश्चय ही समस्त विकारों से मुक्त होकर ब्रह्म-स्वरूप गुरु-चरणों में लीन होने की सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है। प्रतिदिन स्तवन का पाठ करना चाहिए अथवा सोमवार और गुरुवार को तो निश्चय ही इसका पाठ कर बाद में ही अन्न-जल ग्रहण करना चाहिए।।६।।

देह सूक्ष्म प्रयोग

उपरोक्त पंचरत्न स्तवन का पाठ करने के बाद साधक निम्न प्रकार से देह सूक्ष्म प्रयोग सम्पन्न करें —

साधक हाथ में जल लेकर संकल्प करें — **"मैं अमुक गोत्र, अमुक नाम का शिष्य अपनी देह की रक्षा करता हुआ, अपनी स्थूल देह को सूक्ष्म देह में परिवर्तित कर समस्त ब्रह्माण्ड में विचरण करने की सामर्थ्य प्राप्त करने के लिए परम पूज्य गुरुदेव को और उनकी समस्त शक्तियों, उनके समस्त ज्ञान और उनकी समस्त सिद्धियों के साथ मैं उन्हें अपने शरीर में समाहित करता हूं।"**

गुरुदेवः शिरः पातु हृदयं निखिलेश्वरः।
कंठं पातु महायोगी वदनं सर्व-दृग्-विभुः।
करौ मे पातु पूर्णात्मा पादौ रक्षतु स्वामिनः।
सर्वांगं सर्वदा पातु परं ब्रह्म सनातनः।

यः पटेद् गुरु कवचं ऋषि-न्यास पुरःसरम् ।

स ब्रह्म ज्ञानमासाद्य साक्षात् ब्रह्म मयो भवेत् ।

भूर्जे विलिख्य गुटिकां स्वर्णस्थां धारयेद् यदि ।

कण्टे दक्षिणे बाहौ सर्व सिद्धिश्वरो भवेत् ।

इत्येतत् परमं गुरु कवचं यत् प्रकाशितम् ।

दद्यात् प्रियाय शिष्याय-भक्ताय प्रिय धीमते ।

अर्थात् परम पूज्य गुरुदेव हमारे सिर की रक्षा करें, परम पूज्य स्वामी निखिलेश्वरानंद जी हमारे हृदय की रक्षा करें, महायोगी गुरुदेव हमारे कण्ठ की रक्षा करें और समस्त ब्रह्माण्ड को देखने वाले ब्रह्म स्वरूप गुरुदेव हमारे शरीर की रक्षा करें।

पूर्ण स्वरूप गुरुदेव मेरे दोनों हाथों की रक्षा करें, मेरे स्वामी गुरुवर मेरे दोनों पैरों की रक्षा करें, सनातन ब्रह्म-स्वरूप परम पूज्य गुरुदेव स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी मेरे समस्त शरीर की रक्षा करें।

इस गुरु कवच का ऋषि महायोगी, छन्द अनुष्टुप देवता स्वयं गुरुदेव तथा चतुर्वर्ग फल-प्राप्ति के लिए यह प्रयोग है। जो शिष्य इस प्रयोग का पाठ करता है, वह समस्त सिद्धियां को प्राप्त कर गुरुदेव का प्रिय बनता हुआ पूर्णरूप से ब्रह्ममय हो जाता है।

जो शिष्य इस कवच को भोज-पत्र पर लिखकर, स्वर्ण गुटिका में रखकर अपने कण्ठ या दाहिनी भुजा पर धारण करता है, वह निश्चय ही समस्त प्रकार की सिद्धियों का स्वामी हो जाता है।

मैंने अत्यन्त गोपनीय इस गुरु कवच को स्पष्ट किया है, इसे गुरु भक्त, बुद्धिमान और प्रिय शिष्य को ही प्रदान करना चाहिए।

इस प्रकार साधक इस स्तोत्र कवच का पाठ कर, दोनों हाथ जोड़ कर गुरुदेव के चित्र या उनकी पादुका के सामने भक्ति-भाव के साथ प्रणाम करे—

करुणामय! दिनाधीश! तवाहं शरणं गतः।

त्वत् पादाम्भोरुहच्छायां देहि मूर्ध्नि यशोधन।।

अर्थात "हे करुणामय! हे तीनों लोकों के ईश्वर! मैं आपकी शरण में आया हूं, हे गुरुदेव! हे कृपा पुञ्ज! मेरे मस्तक पर अपने चरण-कमलों की छाया प्रदान करें।"

इस प्रकार साधना और प्रयोग सम्पन्न करने के बाद जब गुरु प्रसन्न होते हैं, (तो उनके चित्र से या उनकी पादुका से यदि वे साक्षात् उपस्थित हों, तो उनके मुंह से शब्द उच्चरित होते हैं, यदि पूज्य गुरुदेव सशरीर सामने उपस्थित न हों, तो साधक ऐसा अनुभव करें) कि पूज्य गुरुदेव उसे ऐसा ही आशीर्वाद दे रहे हैं—

उत्तिष्ठ वत्स! मुक्तोऽसि ब्रह्म-ज्ञान-परो भव।
जितेन्द्रियः सत्य-वादी बलारोग्यं सदास्तु ते।।

अर्थात् "हे पुत्र! हे शिष्य! हे आत्मीय उठो! तुम मुक्त हो, मेरे शिष्य रहते हुए ब्रह्म ज्ञान का अध्ययन करो, तुम अपनी इन्द्रियों पर विकारों पर और बुद्धि पर नियंत्रण करते हुए सत्यवादी बने रहो और जीवन में चुनौतियों का दृढ़ता के साथ सामना करो। बल और आरोग्य हमेशा तुम्हारे साथ रहे तथा तुम पूर्णता प्राप्त करो।"

इसके बाद साधक खड़े हो कर पूर्ण भक्ति-भाव से गुरुदेव की आरती सम्पन्न करें और गुरुदेव को समर्पित किया हुआ प्रसाद स्वयं तथा अपने परिवार को दें तथा गुरुदेव का आज्ञाकारी होकर देवता के समान भूमण्डल पर विचरण करता हुआ, उनके आदेशों का पालन करें।



निखिलेश्वरं

निखिलेश्वरं भुवनेश्वरं, भवनेश्वरं, यजनेश्वरं।
परमेश्वरं मदनेश्वरं सर्वेश्वरं कामेश्वरं।
वरणेश्वरं, करुणेश्वरं, भाग्येश्वरं, दक्षेश्वरं।
कार्येश्वरं, कर्मेश्वरं, पूर्णेश्वरं निखिलेश्वरं।१।

यज्ञेश्वरं, दक्षेश्वरं, अमलेश्वरं, कमलेश्वरं।
नाथेश्वरं, योगेश्वरं, गैरेश्वरं, नामेश्वरं।
लेखेश्वरं, लक्ष्येश्वरं, मायेश्वरं, सकलेश्वरं।
नरमेश्वरं, शिष्येश्वरं विमलेश्वरं, निखिलेश्वरं।२।

पद्मेश्वरं, कनकेश्वरं देहेश्वरं, देवेश्वरं।
ज्ञानेश्वरं, तापेश्वरं, कार्येश्वरं, वागीश्वरं।
मणिकेश्वरं, पलभेश्वरं, इच्छेश्वरं, पूर्णेश्वरं।
मंत्रेश्वरं, तंत्रेश्वरं, यंत्रेश्वरं, निखिलेश्वरं।३।

एकेश्वरं, दिव्येश्वरं, भव्येश्वरं, शब्देश्वरं।
विद्येश्वरं, परमेश्वरं, जयनेश्वरं, रक्षेश्वरं।
तारेश्वरं, शक्तीश्वरं, भक्तेश्वरं, शक्त्येश्वरं।
धरणीश्वरं, व्याप्येश्वरं, सिद्धेश्वरं, निखिलेश्वरं।४।

श्रींशेश्वरं, ह्रींशेश्वरं, क्लींशेश्वरं, मायेश्वरं।
चिन्त्येश्वरं, एकेश्वरं, वागीश्वरं, कालेश्वरं।
तपसेश्वरं, तापेश्वरं, सृष्ट्येश्वरं, तरणेश्वरं।
निखिलेश्वरं, निखिलेश्वरं, निखिलेश्वरं, निखिलेश्वरम्।५।

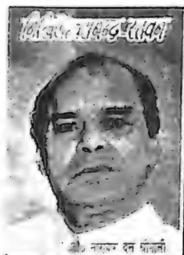


समस्त साधनाओं और सिद्धियों के आधार गुरु ही होते हैं, बिना उनकी कृपा के व्यक्ति कितना भी प्रयास क्यों न कर ले, सफलता दूर ही रहती है। पूज्यपाद गुरुदेव के लीला स्वरूप एवं ज्ञान स्वरूप को सुन्दर श्लोकों के माध्यम से जितना इन दो ग्रन्थों में प्रस्तुत किया है, उतना अन्य कहीं नहीं है। ये दोनों ग्रन्थ ही प्रत्येक शिष्य के लिए भगवद्गीता की तरह हैं, जिनका पाठ करना ही पुण्यदायी है।



निखिलेश्वरानन्द स्तवन

रु. 120/-

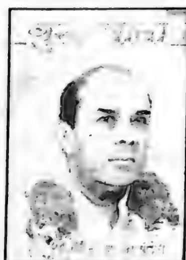


जो एक स्तवन नहीं शब्दों के माध्यम से ब्रह्म को व्यक्त करने का प्रयास है, सद्गुरुदेव की लीलाओं को पंक्तिबद्ध करने का प्रयास है, जिसके पाठ करते ही स्वतः ध्यान की क्रिया आरम्भ हो जाती है, समाधि की भाव-भूमि स्पष्ट होने लगती है और सिद्धियां तो मानों हाथ जोड़ कर सामने खड़ी होती हैं . . . तभी तो यह मात्र स्तवन नहीं काल के भाल पर लिखी अमिट पंक्तियां हैं, शिष्यों व साधकों द्वारा नित्य पठनीय एवं श्रवणीय एक दिव्य ग्रन्थ।



गुरु गीता

रु. 150/-



गुरु गीता सम्पूर्ण वेद, पुराण, श्रुति और समस्त ग्रन्थों का निचोड़ है, जिसके पढ़ने मात्र से ही भौतिक और आध्यात्मिक जीवन में पूर्णता मिलती ही है, इसका नित्य पाठ करना ही भाग्य को सोने की कलम से पुनः लिखने जैसा है। यह ग्रन्थ तो प्रत्येक शिष्य और साधक के लिए अनिवार्य है।

अनमोल धरोहर

पूज्यपाद गुरुदेव के वाणी में अटूट ज्ञान का संग्रह . . . **"तमसो मा ज्योतिर्गमय"** . . . की यात्रा . . . जिसके सुनने मात्र से जीवन में आनन्द व्याप्त होने लगता है . . . जीवन के रहस्य को उजागर करता हुआ, अद्वितीय संग्रह . . . सिर्फ आपके लिए ही नहीं अपितु आपकी आने वाली पीढ़ियों के लिए संजोकर रखने वाली अमूल्य धरोहर है . . .

नवीनतम कैसेट्स

(जो नये रूप में अभी-अभी तैयार हुई हैं।)

गुरु वाणी	**गुरु हमारी जाति है**	**सांस सांस में गुरु बसे**
गुरु बिन रह्यो न जाय	**गुरु हृदय स्थापन प्रयोग**	**गुरु पूजन**
ध्यान योग	**साधना सूत्र**	**अष्ट सिद्धि**
तन्त्र रहस्य	**महालक्ष्मी साधना**	**अक्षय पात्र साधना**
कायाकल्प	**ॐ मणि पद्मे हुं**	**ध्यान, धारणा और समाधि**

और ये दिव्यतम कैसेट्स . . .

शिव सूत्र	कालज्ञान प्रयोग	सशरीर सिद्धाश्रम प्राप्ति प्रयोग
शिव पूजन	कालज्ञान विवरण	पाशुपतास्त्रेय प्रयोग (३ भाग)
पराविज्ञान	दुर्लभ गुरु भजन	निखिलेश्वर महोत्सव (६ भाग)
संध्या आरती	हिप्नोटिज्म रहस्य	मैं खो गया तुम भी खो जाओ
पारद विज्ञान	गुरु साधना चिन्तन	मैं अपना पूर्व जीवन देख रहा हूं
पूर्णत्व सिद्धि	ब्रह्माण्ड भेदन प्रयोग	सहस्राक्षी लक्ष्मी विवेचना एवं प्रयोग
राजयोग दीक्षा	प्राणतत्त्व जागरण प्रयोग	शरीरस्थ देवता स्थापित सिद्धि प्रयोग
निखिल स्तवन	षोडशी त्रिपुर साधना	मनोकामना पूर्ति प्रयोग एवं गुरु पूजन
लक्ष्मी मेरी चेरी	पारदेश्वरी लक्ष्मी प्रयोग	पारदेश्वर शिवलिंग पूजन तथा रसेश्वरी दीक्षा
पूर्णत्व ब्रह्म दीक्षा	मनोकामना पूर्ति प्रयोग	
कुण्डलिनी योग	पूर्ण पौरुष प्राप्ति प्रयोग	

ऑडियो कैसेट प्रति – ३०/-

(डाक व्यय 24/- अतिरिक्त)

5 कैसेट्स से अधिक कैसेट्स मंगाने पर डाक व्यय संस्था वहन करेगी।

सम्पर्क

मंत्र शक्ति केन्द्र, डॉ. श्रीमाली मार्ग, हाई कोर्ट कॉलोनी, जोधपुर (राज.), फोन : 0291-32209

सिद्धाश्रम,306, कोहाट एन्क्लेव, पीतमपुरा, दिल्ली, फोन : 011-7182248, फेक्स: 011-7196700

अमृत बूंद पड़ी तन-मन पर

जीवन के अनेक आयाम हैं, जीवन-पथ में लक्ष्य की प्राप्ति के लिए तो कई द्वारा खुले हुए हैं— ध्यान, धारणा, समाधि, योग, कुण्डलिनी जागरण अनेक रास्ते हैं . . .

और आप इस रास्ते से होते हुए अपनी मंजिल तक पहुंच सकते हैं, जिसे **पूर्ण मदः पूर्णमिदं** कहा गया है: . . और इसके लिए आवश्यकता है पग-पग पर मार्गदर्शन की . . . ये मात्र कैसेट ही नहीं हैं, अपितु जीवन के, साधना के पग-पग पर मार्गनिर्देश करने का एक सशक्त माध्यम हैं पूज्य गुरुदेव की वाणी में—

ऑडियो कैसेट प्रति – ३०/-

- गुरु गीता
- गुरु हमारो गोत्र है
- गुरु गति पार लगावे
- गुरु मोरो जीवन आधार
- गुरु पादुका पूजन
- दुर्लभोपनिषद्
- कठोपनिषद्
- शिष्योपनिषद्
- प्रेम धार तलवार की
- प्रेम न हाट बिकाये
- अकथ कहानी प्रीत की
- पिव बिन बुझे न प्यास
- सूली ऊपर सेज पिया की
- घूंघट के पट खोल री
- काहि विधि करूं उपासना

वीडियो कैसेट

- सिद्धाश्रम
- कुण्डलिनी
- स्वर्णदेहा अप्सरा
- लक्ष्मी आबद्ध प्रयोग
- पाशुपतास्त्रेय
- शिव पूजन
- अक्षय पात्र साधना
- मुज़फ्फर नगर शिविर
- मैं गर्भस्थ बालक को चेतना देता हूं
- कुण्डलिनी जागरण की झलक
- तंत्र के गोपनीय रहस्य
- हिप्नोटिज्म रहस्य
- साधना, सिद्धि एवं सफलता
- मन मयूर नाचे
- लक्ष्मी मेरी चेरी

सम्पर्क

मंत्र शक्ति केन्द्र, डॉ. श्रीमाली मार्ग, हाई कोर्ट कॉलोनी, जोधपुर (राज.), फोन : **0291**–432209

सिद्धाश्रम,306, कोहाट एन्क्लेव, पीतमपुरा, दिल्ली, फोन : 011-7182248, फेक्स: 011-7196700